ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियोयोनः प्रचोदयात् ॥

ब्रह्म पथ-प्रसाद

प्रस्तुत पुस्तक शुभ स्थान कोठी जोड़ी (निकट बघाट हाउस) सोलन तिथि ज्येष्ठ शुक्ला ८ संवत २०१५ तदनुसार २६ जून १९५८ सोम वार प्रातः समय प्रभु प्रेरणा से लिखनी आरम्भकी

लेखक
श्री पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मा नन्द जी महाराज

प्रकाशक
श्रीमती सन्तोषजी धर्मपत्नी श्रीला० मदनलालजीबजाज
इलैकट्रिक फिलोरज़ मिलज़ मिलरगंज लुधियाना

पहली बार-१०००   आश्विन संवत २०१५

सामवेद   अथर्व वेद

ओ३म्

विषय-सूची

सं०	विषय	पृष्ठ
१	विषय-सूची...	...
२	आवश्यक सूचना	...क
३	भूमिका समपर्ण आदि...	...१ से १२ तक
४	ब्रह्म पथ-प्रसाद-भजन-प्रार्थना...	...१३ से १५ तक
५	पहला उपदेश... मनुष्य कर्त्तव्य-सावधान्ता-निम्न बातें भूल जाओ निम्न बातें स्मर्ण रखो, मधुर वाणी बोलो-विषय भोग का परिणाम आदर्श बनो	...१६ से ४४ तक
६	दूसरा उपदेश-सुधारक...	...४५ से ७३ तक
७	तीसरा उपदेश-समय की कदर-करो... भजन पलपल कर ए बन्दे, उठ जाग मुसाफिर	...७४ से ८६ तक
८	चौथा उपदेश-आध्यात्मिक योग... यम-नियम-प्रार्थना-नरीक्षण	...८७ से १०६ तक
९	पांचवा उपदेश-सत-संग	१०७
१०	दृष्टान्त उगंली मार	१११
११	सगंति कारण-संस्कार	११२
१२	चोर और उसका लड़का	११६
१३	सत्संगी और चोर	११७
१४	कथा	१२१
१५	सन्त संग—प्रश्न उत्तर	१२४
१६	साधक को कैसा भोजन करना चाहिये	१२७
१७	दृष्टान्त जो कुछ वह करता है, भला करता है	१३६
१८	दृष्टान्त लुकामान हकीम	१३९
१९	वह कहां और कैसे मिलता है (कविता)	१४३

ओ३म्

आवश्यक सूचना

कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन ॥
मा कर्म फल हेतुर्भू माते सङ्गऽस्तव कर्मणि ॥ गीता २-४७

हे अर्जन तुझे केवल कर्म करने का अधिकार है फल की इच्छा कदापि न कर। फल की इच्छा रखने वाला आवागमन के चक्र से नहीं छूट सकता निष्काम कर्म करते हुए फल की इच्छा न रख। फिर तू आवागमन के चक्र से छूट कर दुःख सुख से मुक्त हो जाएगा।

गीता का पाठ नित्यप्रति करने वाले वर्तमान काल में प्रेमी बहुत हैं परन्तु वे पाठ मात्र से ही मोक्ष की प्राप्ति समझते हैं परन्तु वे भूल जाते हैं कि जब तक ज्ञान के साथ २ कर्म न किया जावे वह ज्ञान निष्फल होता है श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने कहा है हे अर्जुन तू कर्म कर पर निष्काम भावना से अपना ममत्व या अहमभाव त्याग दे कवि लिखता है।

फर्ज़ पूरा कर कि बेकारी से अफ़ज़लकार है।
आदमी की ज़िन्दगी बे अमलोदुशवार है ॥
राहते दिल है मुयस्सर बे तमन्ना शख्स को ॥
दिल से तू मेरे हवाले कर तमाम अफ़आल को।
बे खतर और बे तमन्ना जंगम में मशग़ूल हो ॥

गुरू नानक देव जी ने कहा है:—

जो तू उसदा हो रहे सब जग तेरा होय ॥

पाठकगण! मैं प्रभु प्रेरणा से चौमासे के दिनों में मौन व्रत करता हूँ, और व्रत काल में प्रभु प्रेरणा ही से पुस्तक लिखी जाती है। वह छप कर भगवद् प्रसाद के रूप में प्रेमियों को दी जाती है। पुस्तक के प्रकाशार्थ धन के लिए किसी से मांग या अपील नहीं की जाती, किन्तु जिन भगवत प्रेमियों के पास भगवत पूञ्जी होती है वे स्वयं श्रद्धा तथा सात्विक भावना से भेज देते हैं। देखिये भगवान किस प्रकार उनको प्रेरणा करते हैं।

१—६ फर्वरी १६५८ को दैवयोग से मैं प्रयाग निकेतन जवाहर नगर सब्जी मण्डी दिल्ली पहुँचा, तो श्रीमति शान्ति देवी जी ने कहा कि श्रीमति कृष्णावन्ती धर्म पत्नी लाला प्रकाश लाल डूंगर ५।१२ साउथी पटेल नगर नई दिल्ली यहां पर आई थी। वह आपसे मिलना चाहती हैं। अपना टैलीफोन नं० भी बतला गई हैं। अतः मैंने टैली-फोन किया, और पूछा-क्या आज्ञा है? उत्तर मिला, मैं आप से एक कायार्थ मिलना चाहती हूँ। आज्ञा हो तो मैं प्रयाग निकेतन आ जाऊँ मैंने कहा में स्वयं करोल बाग कार्यवश आ रहा हूँ। वहीं से आपके यहां होता आऊँगा। आप यहां आने का कष्ट न करें। तदनन्तर करोल बाग़ से होता हुआ उनके स्थान पर पहुँचा। बड़ी श्रद्धा से मेरा सत्कार किया गया। और १०१) रू० भेंट करते हुए कहा! आपने निष्काम भावना से ज्ञान यज्ञ रचाया हुआ है। यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें। इस लिए ही मैं आपसे मिलना चाहती थी। प्यारे! यह है निष्काम कर्म, सात्विक भावना, और श्रद्धा।

२—१६ जनवरी ५८ को मैंने प्रयाग निकेतन देहली में स्त्रियों के सत्संग में उपदेश किया। तत्पश्चात श्रीमति प्रेमवती धर्म पत्नी श्री दीवान बहादुर बली राम जी तनेजा पूर्वी मार्ग न्यू देहली ने ५०) रु० मुझे देते हुए कहा महाराज! इस समय मेरे पास यही स्वल्प धन है। मुझे विदित न था कि आप यहां पर होंगे। कृपा करके आप इसे ज्ञान यज्ञ के लिए स्वीकार करें।

३—श्रीमति सन्तोष जी धर्म पत्नी लाला मदन लाल जी बजाज लक्ष्मी इलैक्ट्रिक फिलोर्ज़ मिल्ज़ मिलर गंज लुधियाना सदा मेरे मौन व्रत में बड़ी श्रद्धा-प्रेम सात्विक भावना उदारता से सेवा करती रहती है और व्रत के पूर्ण होने पर ब्रह्म यज्ञ तथा लंगर होता है, उस में भी श्रद्धा से भाग लेती है। इस वर्ष भी ५०) रु० यज्ञ में और १२१) रू० पुस्तकार्थ भेजे हैं पुत्री का जैसा जननी ने नाम रखा है वैसे ही पूर्ण सन्तोष है—यह पुस्तक पुत्री सन्तोष के नाम पर प्रकाशक की जा रही है

४—गत वर्ष मौन व्रत पूरा करके मैं चण्डी गढ़ पहुँचा तो श्री

गुरुबख्श राय जी भल्ला बाटा शू सैक्टर नं० २२ चण्डीगढ़ ने मुझ से कहा महाराज ! जब आप पुस्तक छपवायें हमें भी याद रक्खें। अब इस मौन व्रत में उन्होंने ५०) सात्विक भावना और श्रद्धा से भेजे हैं। इसी प्रकार यह पुस्तक "ब्रह्म पथ प्रसाद" प्रेमियों की श्रद्धा भावना युक्त निष्काम सेवा से प्रकाशित हो रही है। यद्यपि उनकी इच्छा नहीं कि उनका नाम लिखा जावे। और होना भी ऐसा ही चाहिए परन्तु लौकिक विचार से उनकी सद्भावना को प्रकट करना कोई दोष भी नहीं है। अतः निम्नलिखित इस निष्काम ज्ञान यज्ञ में आहुति डालने वालों के शुभ नाम प्रकाशित किये जाते हैं। जिन्होंने आर्थिक रूप से सेवा की है। प्रभु देव इन सब को आशीर्वाद दें। और इनकी सदा ऐसे धर्म कार्यों में प्रवृत्ति तथा अधर्म कार्यों से निवृत्ति बनाये रक्खें।

१. श्रीमती सन्तोषजी धर्म पत्नी श्री मदन लालजी लक्ष्मी इलैक्ट्रीक फिलोर मिलज़ लुधियाना द्वारा श्री मती माता सन्तोष जी २५) रु० श्रीमती शकुन्तला देवी जी २५) रु सुदर्शनी जी २५) रु. श्रीमती सन्तोष जी ४६) रु कुल १२१) रु
२. श्रीमती कृष्णा वन्ती जी धर्म पत्नी ला० कृष्ण लाल खुगंर ५।१३ ईस्ट पलेट नगर देहली १०१) रु
३. श्रीमती प्रेम वती धर्मपत्नी श्रीदीवान बहादुर बलीरामजी तनेजा पूर्वी मार्ग नियू देहली ५०) रु
४. श्री लाला गुरबखश राय जी भल्ला बाटा शू सैकटर न० २२ चन्डी गड़ ५०) रू०
५. श्री दीवान बस्ती राम जी आर्य २९ वजीरा बाग़ श्री नगर कशमीर २५) रू०
६. श्री ला० अनन्त राम जी वकील देहरा दून २५) रू०
७. श्री मती शान्ता जी धर्म पत्नी श्री मदन गोपाल जी पटेल चौकद जलन्धर शहर २५) रू०

श्रीमती धर्म देवी धर्म पत्नी श्री ला० राम लाल जी चीफ इन्जन्यिर पावर हाऊस चन्दौसी मुरादाबाद २०) रू०

८. श्री ला० सूरज भान जी भाटिया रीटाइर्ड फारिस्ट आफीसर देहरा दून २०) रू०

९, श्री ला० तेज भान जी रीटाइर्ड फारिस्ट आफीसर देहरा दून १५) रू०

१०, श्री ला० शिव दयाल जी ठैकेदार सोलन (हिमाचल प्रदेश) २०) रू०

११. धर्म पत्नी श्री प० राजेन्द्र देव जी शर्मा हैडमास्टर-पुत्री उमला देवी जी चन्डी गढ़ १५) रू०

१२. श्री मती सरस्वती देवी c/o शान्ति देवी जी धर्म पत्नी ला० हन्स राज जी जम्मू २०) रू०

१३. श्रीमती शान्ति देवो धर्मपत्नी हन्स राजजी जम्मू १०) रू०

पुत्र वधू श्री डा० दीना नाथ जी वधावा चन्दौसी (मुरादा बाद २१) रू०

१४. श्री डा० नारायण दास जी आई स्पेश लिस्ट गोहाटी (आसाम) २१) रू०

१५. श्री मुखी राम कृष्ण जी टीचर प्राविशंल पटवाड़ स्कूल छछरोली १५) रू०

१६. श्री बा० भक्त राम जी स्टेशन मास्टर (जीन्द शहर) १०) रू०

१७. श्री ला० सत्य पाल रत्न जी डिकशाई हिमाचल प्रदेश १०) रू०

१८. श्री मती शान्ति देवी धर्म पत्नी श्रीं इन्द्र सैन जी ८१ राज पुर रोड देहरा दून १०) रू०

१९- श्री मती सरस्वती देवी धर्मं पत्नी श्री रघुवर दयाल भटनागर सोहन गंज देहली १०) रू०

२०. श्री ला० बाल कृष्ण जी सूद (हुशयार पुर) १०) रू०

२१. श्री मती पुष्पा देवी धर्म पत्नी ला० मुरली धर जी करौल बाग देहली १०) रू०

२२. श्री मती शकुन्तला देवी तथा महेश चन्द जी मुजफ्फर नगर यू. पी. १०) रू०

श्री ला० मदन मोहन लाल जी पट्टी वाले चन्दौसी (मुरादा बाद) १०) रू०

२३. श्री आर्य स्त्री समाज न्यू कालोनी गुड़ गांवां २५) रू०

२४. धर्म पत्नी श्री नरेन्द्र जी चन्दौसी (जि० मुरादाबाद १०) रू०

भूमिका

वर्तमान काल में विज्ञान (साइंस) की उन्नति ने जहां हमारे जीवन के लिए प्राकृत उन्नति की है, वहां अध्यात्मिक उन्नति (सदाचार) के हानि पहुँचाने में कोई कमी नहीं की । जब लोग पैदल चलते थे या ऊँठ घोड़े की सवारी का प्रयोग करते थे। रेल-मोटर-गाड़ी-हवाई जहाज़ नहीं थे उस समय उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता था। और नाना प्रकार के पाप-बुराईयां करके भाग जाने का अवसर न मिलता था। जब लोग मदारी के खेल से दिल बहलाते थे, सिनेमा और थियेटर न थे उस समय लोगों में सहानुभूति प्रेम-ईश्वर विश्वास-सदाचार था। जब छापे खाने नहीं थे उस समय लोगों को गंद नावल-जासूसी किस्से-कहानियां पढ़ने को न मिलते थे इसलिए उन लोगों के हृदयों पर पाप की मैल न जमती थी और शुद्ध-निर्मल-पवित्र हृदय होते थे। मैं यह नहीं कहता कि विज्ञान की उन्नति नहीं होनी चाहिए। विज्ञान ने हमें बहुत से लाभ भी पहुँचाए हैं। परन्तु हमने इसका उलटा प्रयोग करके बजाए लाभ उठाने के हानि प्राप्त की है। इसका कारण क्या है? कि हमने बुद्धि (दिमाग़) से काम लिया है। हृदय से नहीं। बुद्धि अच्छी न हो तो मनुष्य को इतनी हानि नहीं पहुँचती जितना हृदय का अच्छा न होने से हानि पहूँचती है। किसी बुद्धिमान ने ठीक ही कहा है कि दिन बुरे हों तो कोई बात नहीं दिल बुरा न हो। बुद्धि ठीक न होने से मनुष्य जीवित रहता है लेकिन दिल फेल होने से मृत्यु ही है।

बुद्धि और हृदय (दिल और दिमाग) के यकस् (एकसमान) होने पर प्रकाश होता है, हमने इनके अन्दर प्रकाश करने वाली अध्यात्मिक-धार्मिक विद्या की तरफ ध्यान देना छोड़ दिया है।

केवल ऐश्वर्य भोग (धन कमाने) प्राप्ति की शिक्षा पर जोर दिया है इस लिए अब लोगों का स्नेह रुपयों-पैसों से हो गया है। यह धन प्राप्ति का स्नेह इस कदर बढ़ा है कि इसने सब रिश्ते नाते सम्बंधी भूठे कर दिखलाए हैं। पुत्र-पिता में प्यार नहीं–मां बेटी में द्वेष है भाई-भाई का शत्रु है। सच्चे मित्र मिलते नहीं और पति पत्नि भी आपा धापी के कीचड़ में फंस गए हैं। वर्तमान शिक्षा बजाये प्रेम और मिलाप पैदा करने के ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि प्रचण्ड कर रही है। इसका कारण भगवान अपनी अमृत वाणी वेद द्वारा बतलाते हैं।

ओ३म् देवा वा एतस्या मवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसा ये निषेदुः। भीमा जाया, ब्रह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमेष्योमन ॥ (अ० क० १, ५, स १७ मं० ६)

भावार्थः–महात्माओं ने पूर्ण शक्ति से परीक्षा करके साक्षात किया हैं। जहां पर वेद विद्या का निरादर और कुव्यवहार का आदर होता है वहां अवश्य ही विपत्ति पड़ती है। आगे मनु भगवान कहते हैं:—

इदम् शरणम् ज्ञाना मिदं मेव विजानताम्। इद मन्विच्छतां स्वर्गमिद मानन्त्यागच्छताम् ॥ मनु—६—८४

अर्थातः—जानते हों, चाहे न जानते हों सब को इस वेद का अध्ययन करने से स्वर्ग और मोक्ष मिलता है।

ओं एहि स्तोमाँ अभि स्वराभिगृणह्या रूव ब्रह्म च नोवसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ऋ० मं० १ सू० म० ४

भावार्थः–जो मनुष्य वेद विद्या और सत्य के संयोग से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करते हैं। उनके हृदय में

ईश्वर अंतर्यामी रूप से वेद मंत्रों के अर्थों को यथावत प्रकाश करके निरन्तर उनके लिए सुख का प्रकाश करता है। इसलिए उन पुरुषों में विद्या और पुरुषार्थ कभी नष्ट नहीं होता। संत गुरु नानक देव जी महाराज ने कहा है:—

असंख्य ग्रन्थ मुख वेद पाठ आरणमत वेद हथियार—

घड़िये शब्द सच्ची ये टैकसाल ओड़क ओड़क भाल थके-

वेद कहत इक बात ॥

(समाचारपत्र प्रताप ५-५-५८ सं)

वेदों के स्वाध्याय के बिना भारती संस्कृति का पूर्णोद्धार असम्भव है: (बीकानेर के गीता सम्मेलन में डाक्टर सम्पूर्णानंद का भाषण)=उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री डाक्टर सम्पूर्णानंद ने पिछले दिनों गीता सम्मेलन में भाषण देते हुए वेदों के स्वाध्याय पर जोर दिया, और कहा हमारे देश में गीता और उपनिषदों का स्वाध्याय होता है वह केवल फैशन रूप में, परन्तु लोग यह भूल जाते हैं कि उपनिषद वेद का एक भाग हैं। यह सत्य है कि वेदों के स्वाध्याय के बिना भारती संस्कृति का मैयार और उसके असली रूप को समझना सम्भव नहीं, डा० सम्पूर्णानन्द ने भाषण को जारी रखते हुए कहा, गीता को बहुत अहमीयत देना और वेदों को दृष्टि से दूर कर देना,इसी तरह है जैसे दूध की रक्षा की जाय और गौ को भुला दिया जाय। यदि वेद रहें तो इन्हीं से सहस्रों गीता निकल सकती हैं। परन्तु गीता से वेद सृष्टि नहीं हो सकती। गीता तो वास्तव में यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के दो मन्त्रों की व्याख्या है।

ऋषि दयानन्द जी महाराज ने आर्य समाज के नियम बनाते हुए पहले नियम में यह लिखा।,"सब सत्य विद्या और जो

पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका आदि मूल परमेश्वर है।" और तीसरे नियम में यह लिखा। "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।" छटे नियम में लिखा। "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।" अर्थात शारीरिक-सामाजिक और आत्मिक उन्नति करना।

पाठकगण! ऋषि दयानन्द महाराज ने वेद की कसौटी पर ऐसे आर्यसमाज के नियम बनाये जिसको प्रत्येक सम्प्रदायों ने अपनाया और आचरण कर रहे हैं। परन्तु संसार को आर्य बनाने वाली सभा इस पर आचरण करने से कोसों दूर. आर्य समाज का सभासद बनने पर इन नियमों को साक्षात रखते हुए हस्ताक्षर करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं कि हम इन पर आचरण करेंगे। काश! कथनी करनी एक हो जाती, तो आज भारतवर्ष सच्चा वेद का पुजारी होता. घर-घर में राम राज होता, परन्तु आज यह सभा दर दर की भिखारिन बनी हुई है। शराबी-अफीमी-मांसहारी-ज्वारी-दुराचारी-ब्लैक करने वाले-रिश्वत लेने वाले-झूठ और असत्य का व्यवहार करने वालों के द्वार पर जाकर धन की भिक्षा मांगती है और उनको आर्यसमाज की पवित्र वेदी पर आसन दे कर बिठलाती है और अधिकार लेने के लिए आपस में लड़ाई-झगड़ा करती है। यह संसार को आर्य बनाने वाली सभा सोसाइटियों की सन्तान और परिवार आर्य नहीं बनीं तो दूसरों को क्या बनाएंगी।

कहते सो करते नहीं-मुख के बड़े लबाड़ ।
काला मुख लेजावेंगे साहिब के दरबार ॥

करनी बिन कथनी कथे-अज्ञानी दिन रात।

कूकर ज्यों भौंकत फिरे, सुनी सुनाई बात ॥

ओ संसार को आर्य बनाने वाले ठेकेदारो ! ऋषि दयानन्द की जयजय कार पुकारने से या वैदिक धर्म की जय-जय करने से तुम आर्य नहीं कहला सकते । न तुम्हारा अब मान होगा ।

मान होगा । पर कब होगा । लो तुम्हें सुनाता हूँ ।

एक विद्वान ब्राह्मण एक धर्मात्मा नरेश के हां पहुँचे । नरेश की ओर से अच्छी प्रकार से आओ भगत और सत्कार हुआ । ब्राह्मण ने कहा राजन ! आपकी इच्छा हो तो मैं आपको गीता सुनाऊँ ? महाराज ने उसकी तरफ देखा और कहा, आप कुछ दिन और गीता का अध्ययन करके आवें । यह बात ब्राह्मण को बहुत बुरी लगी । यह लौट कर चला गया, परन्तु गीता का उसी प्रकार अध्ययन करता रहा । पूर्ण गीता कंठ करके पुनः राजा के पास गया और राजा ने पूर्ववत उत्तर दिया । कि आप अभी कुछ दिन गीता का अध्ययन करें और फिर आवें । एक बार, दो बार, तीन बार—कई बार ब्राह्मण को यही उत्तर मिला, जिससे वह निराश सा हो गया । अकस्मात गीता का अध्ययन करते हुए उस की दृष्टि उन श्लोकों पर पड़ी जिस पर वैराग्य का प्रसङ्ग था । हृदय में विचार उत्पन्न हुआ । शोक है मुझ पर, कि मैं एक तुच्छ राजा के पास बार २ इसलिए जाता रहा कि वह मुझ से गीता की कथा सुने और इस प्रकार मुझे उससे पर्याप्त दक्षणा प्राप्त हो । मैं उस दयामय अनन्त प्रभु की शरण छोड़ कर इधर-उधर भटकता रहा हूँ । तत्पश्चात वह गीता के अध्ययन में मग्न हो गया ।

बहुत दिन बीत गए और ब्राह्मण राजा के पास न आया यह देखकर नरेश ने अपना सेवक उसके पास भेजा । परन्तु ब्राह्मण देवता ने राजा के हां जाने से इनकार कर दिया । परिणाम यह हुआ कि राजा स्वयं चलकर ब्राह्मण की झौंपड़ी में पहुँचा और

कहा—ब्राह्मण देवता! अब आपने गीता का अध्ययन ठीक ढंग से किया है क्योंकि अब आपके अन्दर वैराग उत्पन्न हो गया है। यदि जीवन में वैराग और भगवत भक्ति न आवे तो गीता पढ़ने से क्या लाभ? अब आप पाठ करें और मैं आपके चरणों में बैठ कर आपके श्री मुख से गीता को सुनूँ।

आशा है इस सारे लेख के भाव को आप जान गए होंगे कि वैदिक धर्म की जय-जय पुकारने वालों के अँदर कौन सी कमी है। जिस से आर्य जाति बढ़ने के स्थान घटती जा रही है। और ईर्ष्या द्वेष की अग्नि भड़क रही है। घर-घर में अशांति का राज्य है प्यारे! वह है वैराग और प्रभु भक्ति। वैराग के अर्थ यह न जानें कि बाल व बच्चों व, घर बार छोड़ कर जंगल में चला जावे। कवि लिखता है:—

तरक दुनिया नेस्त-तरके दौलतो फ़रज़न्दो ज़न।
बल्कि दिल रा पाक करदन, अज़ मुहबत ईं ओ आँ॥

अर्थात:—धन स्त्री बच्चों का छोड़ देना इसका नाम त्याग नहीं है। बल्कि उनके प्रेम से तथा मोह से दिल को पाक करने का नाम त्याग है। यानि जीवन के सर्व कार्य कर, धन कमा-विवाह कर-संतान उत्पन्न कर,परतु हृदय में उनकी मुहबत को न फंसाए। हृदय में अपने परमात्मा का ध्यान रखे। इसी का नाम त्याग और सन्यास है।

प्यारे! मेरा वेद पर अटल विश्वास है। प्रभु कृपा से नित्य प्रति स्वाध्याय किया जाता है। और प्रभु कृपा से प्रति वर्ष चौमासे के दिनों में १०१ दिन का मौन व्रत एकाँत स्थान में किया करता हूँ। जिन २ वेद मन्त्रों की भगवत प्रेरणा से कुछ २ समझ आती है उन्हें भगवान की दी हुई दात को पुस्तक के रूप में

लिखता हूं । अब इस वर्ष चार मास का मौन व्रत ३-५-५८ से प्रभु कृपा से श्री राजा साहिब लोलन की दी हुई कोठी पर आरम्भ किया है ।

मेरे इस व्रत में सहायक श्री महाराजा दुर्गा सिंह जी महाराज सोलन नरेश जिनसे मुझे दो वर्ष पूर्व उनके स्थान पर व्रत करते बीत गए परन्तु उनसे वार्तालाप करने का मुझे अवसर न मिला था । क्योंकि जब २ मैं व्रत अर्थ उनके हां पहुँचा तो आप अपनीं पूजनीया आनन्द मयी माता के चरणों में गए हुए होते थे । परन्तु इस वर्ष प्रभु देव की कृपा से मुझे उनके साथ बैठकर वार्तालाप करने का कुछ अवसर मिला । मैं श्री राजा साहेब के सम्बन्ध में क्या लिखूँ ? आप दिव्य मूर्त्ति और सच्चे प्रभु भक्त उदार, कोमल तथा सरल हृदय, मधुर भाषी हैं । भगवान ने श्रद्धा-नम्रता का स्वभाव कूट २ कर भर दिया है । दान तथा दया करना इनका मुख्य उद्देश्य है । सदा हंस मुख दीखते हैं । मुझे अपने महल के निकट एक कोठी व्रत अर्थ दी । साथ ही सेवा के लिए एक सेवक नियत कर दिया गया । और स्वयं भी काष्ट करके समय २ पर मेरी रहन सहन के प्रबन्ध की देख भाल करते रहे थे मैं तो इनके दर्शन करके गद् २ प्रसन्न हो जाता हूँ । प्रभु देव इन्हें अपनी भक्ति रसना से भरपूर करें । और अपने नाम रूपी धन से मालामाल करें ।

विनीत
स्वामी ब्रह्मानन्द

॥ समर्पण ॥

त्वदीयं वस्तु गोविन्द । तुभ्यमेव समर्प्यते ॥

परम पिता परमात्मा की अपार कृपा से इस वर्ष सोलन (कोठी जोड़ी निकट बघाट हौस) चौमासा के चार मास मौन के पुण्य दिनों में 'ब्रह्म पथ प्रसाद' पुस्तक लिखने की प्रेरणा मिली। इस प्रेरणा के कारण प्रस्तुत पुस्तक 'ब्रह्म पथ प्रसाद' तैयार हो सकी है यह पुस्तक वेद मन्त्रों के आधार पर लिखी गई है। जोकि ब्रह्म वाणी है। इस लिए इस पुस्तक का नाम ब्रह्म पथ-प्रसाद रखा गया है। अतएव ! प्रभु की प्रेरणा मयी रचना भी इस ब्रह्म स्वरूप परमात्मा के पवित्र चरणों में समर्पण है ।

"धन्यवाद"

मैं उन महानुभावों का भी धन्यवाद करता हूं जिन की पुस्तकों के स्वाध्याय से इस पुस्तक में लिखने की कुछ सहायक सामग्री प्राप्त हुई। मेरे इस पवित्र कार्य में सहयोग देने वाले मेरे प्रेमी श्रीमान पं० राजेन्द्र देव जी शर्मा हैडमास्टर गवर्नमेंट हाई स्कूल चण्डीगढ़ तथा प्रकाशकों को प्रभु देव आशीर्वाद दें ।

मेरे इस व्रत में श्री लाला शिवदयाल जी गवर्नमैंट कन्ट्रैक्टर सोलन जो भगवत् भक्त हैं । साधु-संत-महात्माओं की अगद्ध श्रद्धा-प्रेम-त्याग भावना से तन-मन-धन से सेवा करते हैं । आपने एक धर्मशाला जनता के हित-कल्याणार्थ बनवाई हुई है । आपका जैसा जननी माता ने नाम रखा था वैसे ही अपने नाम को सार्थिक बना रहे हैं। वह सदा हंस मुख रहते हैं। दर पर आये दीन-दुखी-मुहताज की यथा योग्य कोमल हृदय से सेवा करते हैं। और जब २ मैं सोलन व्रत अर्थ पहुँचता हूँ। आप मेरी छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी आवश्यकता को पूर्ण करने में निहाल हो।

जाते हैं। परमात्मा ने इनका हृदय दया भाव से भरपूर कर दिया है। मैं इनका बहुत आभारी हूं। साथ ही लाला राम कुमार जी तथा इनकी धर्मपत्नि श्रीमती जनकदुलारीजी और ला० रामलालजी इन्जनीयर गवर्नमैंट पावर हाऊस और ला० विश्वम्बर दयाल जी श्री राम पाल जी चन्दौसी निवासी श्रीमति विद्यावती जी धर्म पत्नि ला० हरि राम जी सराफ जवाहिर नगर देहली श्री चौ० निहाल चन्दजी तथा उनकी धर्मपत्नि श्रीमती कृष्णादेवी जी, डा० युधिष्ठरजी गुप्ता एम. बी. बी. एस. सैक्टर नं० ११ चण्डीगढ़ और प्रिय पुत्री सन्तोषजी धर्म पत्नि ला० मदन लाल जी लक्ष्मी इलैक्ट्रिक फ्लोर मिल्ज़ लुधियाना। इन सब का आभारी हूँ जो मेरी आवश्यकताओं को मालूम करके बड़ी श्रद्धा-प्रेम-त्याग-भावना से पूर्ण करने में सहायक रहे। प्रभु देव से प्रार्थना है कि वह सदा इनको धर्म कार्योंमें प्रवृत्ति और अधर्म कार्यों से निवृत्ति बनाये रखें।

विनीत
ब्रह्मानन्द

निम्नलिखित पुस्तकें छपवा कर भगवत प्रसाद के रूप में दी गईं—दी जा रही हैं।

१	ब्रह्म यज्ञ प्रसाद	३०००
२	देव यज्ञ प्रसाद	७०००
३	पितृ यज्ञ प्रसाद हिन्दी उर्दू	४०००
४	यज्ञ प्रसाद	४०००
५	ब्रह्म प्रसाद	२०००
६	नारी धर्म कर्तव्य प्रसाद	१०००
७	नारी कर्तव्य प्रसाद	१०००
८	अतिथि यज्ञ प्रसाद	२०००
९	अमृत प्रसाद	१०००
१०	भगवद् यज्ञ प्रसाद	१०००
११	प्रेम सुमन प्रसाद	१०००
१२	ब्रह्म सुमन प्रसाद	१०००
१३	ब्रह्म सोम प्रसाद	१०००
१४	ब्रह्म ज्ञान प्रसाद	१०००
१५	मौन यज्ञ प्रसाद	२०००
१६	परिवारिक सत्संग प्रसाद	२३०००
	कुल	[illegible]

सर्वेषामेव दानानाँ ब्रह्म दानं विशिष्यते।

अर्थात—सबसे उत्तम दान ब्रह्म ज्ञान ही है। ज्ञान का स्वरूप यदि भाव रूप में देखा जावे तो उसका नाम प्रेम है (क्योंकि बिना ज्ञान के प्रेम नहीं होता) ज्ञान का स्वरूप यदि क्रिया रूप में देखा जावे तो उसका:नाम त्याग है, क्योंकि ज्ञान के लिए त्याग करना होता है। त्याग से आत्मिक उन्नति होती है।

प्यारे—यदि इस समय तेरे शुभकर्मों के भोग से तेरे पास धन सम्पत्ति है, तो तू इसे यथोचित दान देने में कभी संकोच मत कर जीवन मार्ग को ज़रा विस्तृत दृष्टि से देख और सत्य ज्ञान में देने में अपना कल्याण समझ। सच्चा दान करना सचमुच जगत पिता भगवान को उधार देना है, जोकि बड़े भारी दिव्य सूद के साथ फिर वापिस मिलता है। जो जितना त्याग करता है, वह उससे न जाने कितने गुणा अधिक प्रतिफल पाता है, यह ईश्वरी नियम है। दान तो संसार का महान सिद्धान्त है। और सत्पात्र में दान देना ही धन का सर्व श्रेष्ठ सदुपयोग है। अब से तेरे पास हे भाई! यदि कोई निःस्वार्थ सच्चा याचक आये तो उसे कभी खाली मत भेजना। सामर्थ्य के अनुसार उसे जरूर भरपूर कर देना और विशाल दृष्टि से देखना, कि ऐसा करके तूने अपना ही लाभ किया है, अपना एक आवश्यक स्वाभाविक कर्तव्य करके केवल अपना ही लाभ किया है। पर इस इतनी साफ बात को यदि लोग नहीं समझते हैं तो इसका कारण यह है कि वह मार्ग को दूर तक नहीं देखते हैं और इस संसार में जीवों को शुभ अशुभ कर्मों का फल उन्हें कब का कब मिलता है। यह सब कुछ नहीं दिखाई देता। इसी लिए हमें संसार में चलते हुए वे अटल नियम भी दिखाई नहीं देते जिनके अनुसार सब मनुष्यों का उनके शुभ अशुभ कर्मों का फल आवश्यम्भावित्य भोगना पड़ता है। यदि हम संसा[र] की गति को जरा भी ध्यान से देखें तो पता लगेगा कि धन सम्पत्ति

इतनी अस्थिर है कि यह रथ चक्कर की तरह घूमती फिरती है। आज इसके पास है तो कल दूसरे के पास है। परन्तु हम इतनी क्षुद्र दृष्टि वाले हैं कि संसार में लोगों का नित्य धन नाश होता देखते हुए भी अपने धन नाश के समय से एक पल पहले तक भी हम इस घटना के लिए तैयार नहीं होते, और इसी लिए ज़रा से धन नाश होने पर इतने रोते पीटते हैं। यदि हम मार्ग को विस्तृत देखें तो इन धन नाशों को अत्यन्त तुच्छ बात समझें। यदि संसार में प्रतिक्षण चलायमान घूमते हुए, इस धन चक्कर को देखें, इस बहते हुए धन प्रवाह को देखें तो हमें धन जमा करने का उचित व्यय करने का हम ध्यान करें। इसलिए भाई! तुम जीवन मार्ग का सुदीर्घ देखो विशाल दृष्टि सेदेखो कि जगत में जो यह ईश्वरीय धन-चक्कर चल रहा है वह उपयोग के लिए ही है—

प्रायः पुस्तक लेते समय प्रेमी पुस्तक पर उसका मूल्य अंकित न देख कर प्रश्न किया करते हैं। ऐसे प्रेमी सज्जनों की सेवा में निवेदन है कि अग्नि में जो (हवि) व तु डाली जाती है वह विश्वमें प्रसारित हो जाती है। संन्यासी भी अग्नि रूप होताहै। ज्ञान प्रभु की निज पूँजी है। यह धन द्वारा प्राप्त नहीं की जाती, ज्ञान-अमूल्य वस्तु है। संन्यास धारण कर पुस्तकें बेचना बनिया-पन है ऐसा करना अनुचित है। अतः जब भी मैं पुस्तक लिखकर प्रका शित करने की अकांक्षा करता हूं तो पुस्तक लिखने से पूर्व ही जिन प्रेमियों के पास भगवत पूँजी होती है, वह सात्विक भावना से इस निष्काम ज्ञान यज्ञ में भेज देते हैं। पुस्तक छप जाने पर भगवत प्रसाद रूप में प्रेमियों को दी जाती है। अतः जो भगवत प्रेमी इस निष्काम ज्ञान यज्ञ में अपनी पवित्र कमाई का भाग भेजना चाहें, वह निम्नलिखित पते पर भेज कर प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त कर अपना जीवन सफल कर सकते हैं—कवि लिखता है—

१—प्रभु ने हमें अमृत दिया—समय है जिसका नाम
वे नर नारी धन्य हैं—इस से लेन जो काम

———

२—वेदों को पढ़ते रहो—जा से उपजे ज्ञान
सदा वेद के धर्म हित—करो नित्य बलिदान

———

३—सब दानों से है बड़ा—ज्ञान ही का दान
जिस प्रताप से मिलत है— मानुष्य देह महान

———

४—तरोवर फल नहीं खात हैं-सरोवर पिये न पान
कहे रहीम पर काज हित—सम्पत्ति जचे सो जान

विनीत:—
ब्रह्मानन्द स्वामी
c/o भारत गलास कम्पनी
सदर बाजार देहली फोन नं० २६६८०

ओ३म भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात



श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

सम्वत् २०१८

ॐ

ब्रह्म-पथ-प्रसाद

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमदुच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेव । वशिष्यते ॥ अ. का. ३ सु. २६ म. १

भावार्थ—वह ब्रह्म पूर्ण है। यह जगत पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण उदय होता है। पूर्ण से पूर्ण लेकर भी पूर्ण ही बच रहता है।

आज पूर्णमाशी का पवित्र दिवस है। सत्तसङ्गी प्रेमी भाई-भाई श्रद्धा प्रेम से आश्रम में आ रहे हैं। पर्व के दिन विशेष सत्सङ्ग होता है। सत्सङ्गी प्रेमी आश्रम में पहुँचते ही श्री संत महात्मा जी को नतमस्तक होकर नमस्कार करके सामने बैठते जाते हैं। संत महात्मा की सत्संग शैली इस प्रकार आरम्भ होती है, कि प्रेमी बारी २ महाराज जी से प्रश्न करते हैं। फिर महाराज जी उनका उत्तर देते हैं। अब पूर्व इसके कि प्रेमी प्रश्न करें—महाराज जी की आज्ञा हुई कि सभी मिलकर एक भगवद्-भजन-गान करें।

भजन

जगत जननी प्राण दाता, दुख विनाशक आप हो ।
शरण में हूँ आ पड़ा, आनन्द दाता आप हो ॥
हूं कुचैला और मैला, उत्पन्न किया तूने मुझे ।
शुद्ध करो मुझ को प्रभु, तुम ज्ञान के भण्डार हो ॥
कई तारे कई तर गए, प्रभु तरन तारन आप हो ।
डूबती नैया को मेरी, चप्पु लगा कर पार दो ॥
कर कृपा मुझ पतित पर, तू पतित उधारन हार है ।
करुणा करो मुझ दीन पर, करुणा के सागर आप हो ॥
अपनी भक्ति और शक्ति का, मुझे भी दान दो ।
बेनती “ब्रह्मानन्द” की, [illegible] स्वीकार हो ॥

॥ प्रार्थना ॥

ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम । इद मह मनृतात स्त्यमुपैमि ॥

यजु० अ० १ मं० ५ ।

हे दयालु पिता ! व्रतों के व्रतपति पिता, मैंने मनुष्य जन्म लेने से पूर्व व्रत लिया था कि मुझे इस नरक कुम्भी से बाहर निकाल । मैं संसार में तेरा भजन करूँगा । तेरा साक्षात दर्शन करूँगा । अपने मन की आंखें खोलूँगा और अंदर के तेरे रूप रंगों से आनंद प्राप्त करूँगा । आपके उस स्वरूप का दर्शन करूँ गा । आपकी उस ज्योति और प्रकाश का आनंद लूँगा—जिसकी समता में संसार की कोई वस्तु नहीं है । हे नाथ ! मैं-एक समय पूरे दृढ़ निश्चय से पूरी गम्भीरता से कसी व्रत को ग्रहण करता हूँ परन्तु पीछे सेपतन हो जाता हूँ । धीरे-धीरे यह नियम अथवा व्रत ढीला होता जाता है । इसलिए हे व्रतपते ! मैं आज तेरी शरण आया हूँ । आज वह दिन आ गया है जबकि मैं तुझ व्रत पति के सामने अटल व्रत को धारण कर सकूँगा । मैंने अब निश्चय कर लिया है कि हर समय बाहर आँखें फाड़-फाड़ देखने की अपेक्षा मैं भीतर आँखें खोलूँगा । अपना सारा समय सांसारिक धंदों में लगाने की बजाय मन को पवित्र विचारों में संलग्न करूँगा । मन की जोत जगाऊँगा और अपने आत्म देव की आरती करूँगा । बाहर के राग रँग की ओर से हट कर अन्दर के सुरीले हृदय को आनंद देने वाले राग सुनूँगा । हे प्रभु ! जब सांसारिक थोड़े समय की खुशी और साधारण आनंद के लिए अपना इतना समय देता हूँ, संसार के साधारण कामों में अपना समय लगा सकता हूँ कि जिनके फल का मोल केवल चंद कौड़ियों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता, तो इस काम के लिए क्यों न समय लगाऊँ जिसके लिए मुझे यह मनुष्य जन्म मिला है, जिस का परिणाम मुझे इतना अधिक मिलता है कि

सांसारिक वस्तुएं इसके आगे तुच्छ होंगी। मैं नित्यप्रति इस काम के लिए निरन्तर नियत समय लगाऊँगा और मन की एकाग्रता प्राप्त करूँगा। हे व्रतपते! तुम मेरे व्रत के व्रतपति हो जाओ। मेरे इस व्रत की रक्षा करो। इसके पालक बन जाओ। तुम ऐसी कृपा करो, ऐसी शक्ति प्रदान करो कि मैंइस व्रत को पूर्ण कर सकूं।

हे सत्य स्वरूप प्रभु, मैं आज अन्य बातों को छोड़ कर सत्य के ही लिए इस व्रत को धारण करता हू। यदि मैं इस सत्य के व्रत का पालन कर सकूँगा तो अन्य सब व्रतों को पालन करना मेरे लिए कुछ भी कठिन न होगा। प्रभु देव मेरे पथ प्रदर्शक बनो ताकि मैं मन-वचन -कर्म से सत्य का पालन करता रहूँ। मेरे हृदय में जो हो उसे ही वाणी पर लाऊँ उसे ही अपनी क्रिया द्वारा प्रकट करूँ। निःसंदेह मैं जानता हूँ कि यह कठिन है, परन्तु हे अग्ने! तेरी सहायता से इस संसार में कुछ भी कठिन'नहीं है। कुछ भी असम्भव नहीं है।

हे महा महान प्रभु, मैं अपना निश्चय पक्का कर चुका हूँ कि अपने मन की आंखें नित्य प्रति ध्यान और चिंतन से खोलूँगा। परन्तु आप के आशीर्वाद और सहायता के विना कुछ नहीं कर सकता। अब मेरी सहायता करो, पल-पल क्षण-क्षण में मेरी रक्षा करो, जिससे मेरी अन्दर की आंखें खुल जाएं मुझे आपके दर्शन हो जावें। तभी मैं जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा पाकर तेरी अमृत गोद का वास प्राप्त कर सकता हूँ। आप पूर्ण हो। मैं अपूर्ण हूँ। तुम कृपा करके मेरे इस व्रत को निर्विघ्न पूर्ण करो! पूर्ण करो!! पूर्ण करो!!!

ओं शाँति! शाँति!! शाँति!!!

विनीत—ब्रह्मानन्द

पहला उपदेश॥

अब संतमहात्मा ने सत्संग के प्रेमियों से कहा—धर्म प्रेमियो ! अब जो प्रश्न आपने पूछना हो पूछिए। प्रभु देव की कृपा से उत्तर देने का यत्न करूँगा।

रामदेवः—महाराज, लोग धर्म के अनेक रूप बतलाते हैं। मनु महाराज ने कुछ कहा है। गीता में कुछ और है। दर्शनों में कुछ और दृश्य है। अब आप इस पर प्रकाश डालें कि धर्म के लक्षण क्या हैं ?

संत महात्माः—शास्त्रों की कोइ बात झूठी नहीं होती। जितने धर्म के गुण बतलाए गए हैं वे ठीक हैं। सब से संक्षिप्त रूप में लक्षण—जिसको हम सारे धर्मों का समतत्व समझते हैं यह हैः—

कभी भूल कर किसी से न करो सलूक ऐसा।
कि जो तुम से कोई करता तुम्हें नागवार होता॥

अर्थातः- दूसरों के साथ वही बर्ताव करो, जो तुम चाहते हो कि वह तुम्हारे साथ करें।

सत्य प्रकाशः—महाराज अपने जीवन के सुधार के लिये मनुष्य को कौन २ से दोष और अवगुणों को दूर करना चाहिए ?

उत्तर—कवि लिखता हैः—

चोरी हिंसा और व्यभिचार। काया के तीन दोष वीचार।
निन्दा, कटुवाद, असत्य। वाणी के ये दूषण सत्य॥
तृष्णा, द्वेष विधि, अरु क्रोध। त्रयो ही दूषण मनके शोध।
एहि प्रकार नौ दूषण त्याग। कर सत्संग खेलेंगे भाग॥

शब्द तो सीधे साधे हैं आप प्रेमी सब बातें समझ गए होंगे। मनुष्य के जितने दोष-अवगुण हैं, उन के मुख्य तीन तत्व हैं। अर्थात शरीर, वाणी और मन। शरीर के जो तीन अवगुण या दोष दूर करने

हैं उचित हैं—वे हैं—चोरी[1], किसी को दुख देना[2], व्यभिचार[3], । वाणी के तीन दोष हैं—निन्दा[1], अर्थात चुगली, कड़वा बोलना[2], झूट[3] । मन के जो तीन पाप हैं वह यह हैं—तृष्णा[1], (लालच) द्वेष[2] और क्रोध[3] । जो मनुष्य इन नौ अवगुणों का त्याग कर देता है, उसके भाग खुल जाते हैं।

विद्याभूषण —महाराज ! तीर्थ-व्रत दान-योग आदि क्रियाओं में से कौन सी क्रिया जोवन के लिये कल्याणकारी है? कवि लिखता है:—

कथा में न कंथा में, न तीर्थ के पंथा में ।
न पोथी में न पाथ में, न साथ की बसेत में ।
जटा में न मुण्डन में, न तिलक त्रिपुण्डन में ।
न नदी कूप कुण्डन में, नहान दान रीत में ।
पीठ मठ मण्डन, न कुण्डन कमण्डल ।
न माला वण्ड में, न देव देहोरे की भीत में ।
आप ही अपार हर, ठौर पर भरपुर ।
हियो पाईये, प्रगट, परमेश्वर परतीत में ।

———

सुनो भाई ! शास्त्रों ने जो साधन मनुष्य के कल्याणार्थ बतलाये हैं, वे अपनी २ जगह सभी अच्छे हैं । परन्तु एक वस्तु के बिना वे सभी बेकार हैं । जिस प्रकार शरीर के सभी अङ्ग अपने २ स्थान पर लाभ-दायक हैं, परन्तु शरीर में प्राण के न होने से ये सभी नाकारा हैं । इसी प्रकार सभी साधन बिना श्रद्धा विश्वास के कोई लाभकारी नहीं हो सकते । कोई भी साधन श्रद्धा से किया हुआ लाभकारी हो सकता है । इसका भाव तो आप समझ गये होंगे । अर्थात परमात्मा जो सर्वव्यापक है इसकी प्राप्ति मनुष्य को श्रद्धा से होती है । किन्तु श्रद्धा के बिना कथा

सुनना गूदड़ी पहनना, तीर्थों पर जाना, पोथियों का पढ़ना, किसी और ढंग का बरतना, न ही श्रद्धा के, बिना बाल बढ़ाना कोई लाभ पहुँचा सकता है। मण्ड मुण्डाना, तिलक लगाना, किसी नदी बावली या कुण्ड में नहाना, दान देना, पवित्र स्थान पर जाना, किसी टोली में सम्मिलित होना, कानों में कुण्डल पहनना हाथ में करमण्डल लेना, गले में माला पहनना, हाथ में डण्डा लेना, किसी देवता की पूजा करना, किसी मन्दिर की दीवारों से माथा घिसना, श्रद्धा के बिना लाभदायक नहीं हो सकता।

इस लिये सज्जनो! कोई भी उपाय करो, कोई साधन करो श्रद्धा को हाथ से न छोड़ो। लाभ साधन से नहीं होगा, लाभ तो अपनी श्रद्धा से होगा। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है:—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्ति मचिरेणाधिगच्छति॥ ४-३६

भावार्थ—जितेन्द्रिय और सर्वधर्माचरण में लगा हुआ श्रद्धा वाला पुरुष ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। पुनः ज्ञान को प्राप्त करके वह श्रद्धालु शीघ्र ही (भगवत् प्राप्तिरूप) परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि श्रद्धा को धारण करने से साधक ज्ञानी बन जाता है और ज्ञानवान् होने के कारण इसे किंचित्-कालान्तर परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। वेद में लिखा है:—

ओं पुनाति ते परिस्रुतं सोम सूर्यस्य दुहिता।
वारेण शाश्वता तना॥ (ऋ० मं० ६ सू० १ म० ६)

भावार्थ—जो पुरुष श्रद्धा द्वारा ईश्वर को प्राप्त होता है, वह मानो प्रकाश की पुत्री उषा मनुष्यों के हृदय में आह्लाद उत्पन्न करती है। इस प्रकार जिन मनुष्यों के हृदय में श्रद्धा देवी का निवास है, वे लोग उषा देवी के समान सबके आह्लादजनक सौम्य स्वभाव को

उत्पन्न करते हैं।

ओं तमी हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति वाकुरं दृतिम्।

त्रिधातु वारणं मधु॥ ऋ. मं. ६ सू. १६ म. ८

भावार्थ—जो मनुष्य श्रद्धा भाव रखते हैं। उनके सूक्ष्म स्थूल और कारण तीनों प्रकार के शरीर दृढ़ और शत्रुओं के वारण करने वाले होते हैं। अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक तीनों प्रकार के बल उन पुरुषों को आकार प्राप्त होते हैं।

ओं तमीमण्वी, समर्य आगृभ्णन्ति योषणो दश।

स्वसारः पार्ये दिवि॥ ऋ. मं. ९ मं. १ म. ७

भावार्थ- जो मनुष्य श्रद्धा के भावों से युक्त होता है उसे "धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध" ये धर्म के दस लक्षण रूप आकार प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि वेद शास्त्र और ईश्वर पर श्रद्धा रखने वाले पुरुष को ही धार्मिक भाव आकर प्राप्त होते हैं। अन्य को नहीं।

चन्द्रभानः—महाराज! ऐसे भद्र और महान पुरुष जिनके संग से मनुष्य को लाभ हो कैसे होने चाहिएं?

मत्कर्म त्परमो मद्भक्तः सङ्ग वर्जितः।

निर्वैराः सर्व भूतेषु यः स मामेति पाण्डव –गीता अ. ११-५५

भावार्थ—जो सब कर्म मुझ में समर्पण करता है, मुझ में परायण रहता है, मेरा भक्त बनता है आसक्ति का त्याग करता है और प्राणी मात्र में द्वेष रहित होकर रहता है, वह मुझे पाता है। जिसका संसार में किसी से वैर नहीं जो तटस्थ रह कर संसार की निर्पेक्ष सेवा करता है, जो जो करता है सब मुझे अर्पित कर देता है, मेरी भक्ति से सरोवर है, क्षमावान निर्संग विरक्त, प्रेम मय जो भक्त है, वह परमेश्वर के हाथ का हथियार बनता है—ऐसा यह सार है। कवि लिखता है—

हरि को भजन, साध की सेवा, सर्व भूत पर दाया ।
हिंसा, लोभ, दम्भ, छल त्यागे, विष सम देखे माया ।
सहनशील, आशय उदार, अति धीरज सहित विवेकी ।
सत वचन, सब को सुखदायक, गहि अनन्य व्रत ऐकी ।
इन्द्रियजित, अभिमान न जाके, करे जगत को पावन ।
भगवत रसिक, तासु की संगत, तीनों ताप नाशावन ।

अर्थात्—उस भद्र पुरुष की संगति करनी चाहिये जो परमात्मा का भजन करे, सन्तजनों की सेवा करे, प्राणीमात्र पर दया करे, किसी को कष्ट न दे, लोभ लालच न करे, धोका फरेब छोड़ देवे, धन माल को विष की भान्ति देखे, सहनशील हो, गुण धीचार रखने वाला हो, धैर्यवान हो और वीचार शील हो, ऐसी बात कहे जो सत्य और प्रिय हो, एक परमात्मा पर विश्वास रखे, अपने ऊपर नियंत्रण (कंट्रोल) रक्खे, अभिमान न करे, सन्मार्ग दिखाने वाला हो और प्रभु प्रेमी हो। ऐसे पवित्र आत्मा के सत्सङ्ग करने से तीनों ताप दूर हो जाते हैं।

स्वामी केवलानन्द—महाराज ! आपकी हम पर बड़ी दया है । आप के चरणों में बैठकर हमें बड़ा लाभ पहुँचता है ! जिस कारण हम उत्तम कल्याण के लिए यत्न कर रहे हैं, कृपा कर के यह बतलाने का कष्ट करें-कि हमारा लक्ष्य इस जन्म को सफल करने के लिए क्या होना चाहिये ?

महात्मा—सज्जनो ! आपको सदा अपने हृदय पर दृष्टि रखनी चाहिए। वह यह है। कवि लिखता है:—

दिल बुझ गया है, दुनिया की चाहत नहीं रही ।
दुनिया के माल ओ ज़र से, मुहब्बत नहीं रही ।
दिल सरद है वो गरमिये, उलफत नहीं रही।
देखें जहां को और ये हसरत नहीं रही ।

अब आरज़ू है सालिके, राहे ख़ुदा हूँ मैं ।
दुनिया को छोड़ राहे, ख़ुदा में फ़ना हूँ मैं ।

जिस समय सन्त महात्मा ने यह कविता सुनाई तो जो गृहस्थी-प्रेमी वहां उपस्थित थे, वे चौकन्ने हो गए और उनमें से एक प्रेमी, जिसका नाम 'सर्व प्रिय' था । खड़ा हो गया और पूछने लगा-महाराज ! यदि हम ऐसा बनने का यत्न करें, तो संसार कार्य कैसे चले ? हम अपने संसार कार्य को कैसे पूर्ण कर सकते हैं ।

सन्त—यह जो कुछ हमने कहा है, साधु लोगों से सम्बन्ध रखता है । इन लोगों का आदर्श यही होना चाहिये । नहीं तो घर बार छोड़ने का क्या प्रयोजन ? यदि संसार का त्याग करने पर भी संसार की पोट साथ लगी रही, तो त्याग का क्या अर्थ ? वर्तमान काल के साधु इसलिये बदनाम होगए हैं । उन्होंने संन्यास आश्रम को कलंकित कर दिया है क्योंकि उनके बड़े २ मठ हैं । बड़े २ दिखावे के सामान हैं । हाथी, घोड़े, बग्घी, मोटर, कारें हैं । जो सजावट-बनावट खान-पान उनके पास मिलता है, वह अच्छे से अच्छे गृहस्थियों को प्राप्त नहीं होता । अधिकतर इस दोष के प्रायः गृहस्थी लोग ही जिम्मेवार हैं । जो ऐसे साधुओं को चढ़ावे चढ़ाते हैं, उनसे जन्त्र-मन्त्र, जादू-टोने लेते हैं, उन को गुरु मानते हैं, मैं ने जो कुछ कहा है स्वामी केवलानन्द जी के प्रश्न का उत्तर दिया है । वह साधु संन्यासियों के लिये है गृहस्थियों के लिये नहीं ।

गृहस्थी लोगों का तो यह आदर्श होना चाहिये कि वे पवित्र कमाई करें । उसे स्वयं खायें । औरों को खिलाएं । इसमें से दान करें । दूसरों के हितार्थ अपनी कमाई को लगा दें । घरों में प्रेम-प्यार रखें । निन्दा और द्वेष से बचें । लोभ लालच का ग्रास न बनें । दूसरे की स्त्री को बहिन, बेटी, माता तुल्य समझें । जो ऐश्वर्य पदार्थ गृहस्थी के पास हो उसे परमात्मा की इमानत समझें, अपने आपको धरोहर-रक्षक मात्र

कर इन ऐश्वर्य पदार्थों का प्रयोग करें। इन के भीतर अपने आपको न फंसा दें। वस्तुयें आयें या जायें, हर अवस्था में प्रसन्नचित्त रहें। किसी को दुःख न दें। किसी का हृदय न दुखायें। गरीब भाईयों का सहायता करें अनाथ-विधवा-ओं तथा अन्य दुःखी प्राणिमात्र की सेवा करें। चादर देखकर पांव फैलायें। विषय-विकार का ग्रास न बनें। अनुचित खर्च न करें सादा जीवन बितावें। अभिमान-अहङ्कार से बचें। नेक धर्मात्मा सन्तान उत्पन्न करें। यश कीर्ति के प्राप्त करने वाले कार्य सदा करें। सबके हितचिंतक बनकर रहें।

यह आदेश सुनकर सर्वप्रिय ने महात्माजी का धन्यवाद किया फिर एक और प्रेमी 'जयदयाल जी' ने खड़े हाकर प्रश्न किया—महाराज ! आपने जो उपदेश दिया है। एक एक शब्द हमारे हित और कल्याणार्थ कहा है ताकि हम ऐसे बनें। परन्तु आपके उपदेश अनुसार यत्न करने पर भी दिल की रुचि दूसरी तरफ हो जाती है। दूसरी बात यह है, जिससे भलाई की जाती है वही बुराई करने के लिए तैयार हो जाता है। इससे दिल खट्टा हो जाता है। ऐसी अवस्था को देखकर आश्चर्य होता है। और इसी कारण किसी के साथ भलाई करने को जी नहीं चाहता। अब क्या किया जाय ?

सन्त—सज्जनो ! जयदयाल जी ने जो विचार प्रकट किया है। संभव है और भी बहुत से प्रेमियों का यही विचार हो। इस लिए इन प्रश्नों पर प्रकाश डालना आवश्यक है। पहली बात यह कही गई है कि दिल की रुचि दूसरी ओर चली जाती है। निःसन्देह दिल की यही अवस्था है। गीता में अर्जुन ने भी श्री कृष्ण जी महाराज से यही कहा था कि मन बड़ा चंचल है। वश में नहीं आता। तब भगवान कृष्ण जी ने कहा था—अभ्यास से धीरे २ वशीभूत हो जाता है। शास्त्रों ने भी मन की शक्ति को माना है परन्तु यह भी कहा है—कि निरन्तर प्रयत्नशील होने से वश में हो जाता है। जब इसे निकाल डालने

का यत्न किया जाता है तो यह जोर मार कर इधर उधर निकल जाता है अतः मनुष्य के लिए उचित है कि बार २ इसे इधर-उधर से हटाकर वापिस लाये, तब धीरे २ यह अपनी दौड़ धूप छोड़ देगा।

दूसरी बात जयदयाल जी ने यह कही थी—कि लोग भलाई के बदले बुराई करते हैं। इससे उदासीनता होती है। संभव है यह बात सत्य हो। परन्तु भलाई किसी बदले के भाव से करना भूल है। भलाई अपना कर्तव्य जान कर करनी चाहिए। यदि फल त्याग की भावना से अपना कर्तव्य जान कर भलाई की जावे तो फिर उदासीनता का प्रश्न पैदा नहीं होता। वेद भगवान कहता है—

ओ३म् यो नः कश्चिद्रि रिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः।
स्वैःष ऐवरिरिषीष्टयुर्जनः॥ ऋ० म० ८ सू० १८ म० १३

भावार्थ—अपने अपकारक से बदला लेने की चेष्टा न कर। ईश्वर की इच्छा पर छोड़ दे। वह अपकारक अवश्य अपने कर्मों से समाप्त होता रहेगा या दुष्टता से निवृत होगा। कवि लिखता है:—

की भलाई जो भलाई, के इवज़ में तो क्या।
बात तो जब है कि तू, शर के इवज़ खैर दे॥

मनुष्य का स्वभाव तो ऐसा होना चाहिये। कवि लिखता है-

दुशमन से भी अदावत, नहीं है फ़क़ीर को।
ऐ दोस्त, यां बदी के. इवज़ भी न कोई है॥

जब सन्त महात्मा जयदयाल जी के प्रश्नों का उत्तर दे चुके तो एक सद्गृहस्थी प्रेमी "देवराज" उठा और कहने लगा—महाराज! वैसे तो कहा जाता है कि गृहस्थाश्रम बाकी आश्रमों से श्रेष्ठ है। क्योंकि वे अन्य तीनों आश्रमों की पालना करता है। परन्तु साथ ही यह भी सुनते हैं कि मोक्ष संन्यासाश्रम के बिना प्राप्त नहीं होता। जिसका तात्पर्य यह है कि मोक्षप्रदाता संन्यास आश्रम दूसरे आश्रमों से उत्तम है। क्या

आप इस विषय पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे ?

सन्त महात्मा—अपने २ स्थान पर प्रत्येक आश्रम उत्तम है। यदि इनके कर्तव्यों का ठीक २ पालन किया जावे । देखिये, क्या ब्रह्मचर्याश्रमकम आवश्यक है। यदि इस आश्रम में मनुष्य शरीर और बुद्धि ठीक न बनाये, तो शेष आश्रम कुछ नहीं हैं । जब इसकी नींव पक्की न होगी, तो शेष आश्रम कैसे चल सकेंगे ? मनुष्य के जीने का आधार ब्रह्मचर्य आश्रम ही तो है। इसी प्रकार अन्य आश्रमों के बारे में समझ लो।

संन्यासाश्रम में ज्ञान अथवा मुक्ति प्राप्त करने की बात जा देवराजजी ने कही है। उसके सम्बन्ध में यह बात याद रखनीचाहिए-कि ज्ञान अथवा मुक्ति के लिए कोई समय नियत नहीं है । किसी भी समय में मनुष्य इसे प्राप्त कर सकता है । घर-बार छोड़ना भी आवश्यक नहीं। लोगों ने आज कल संसार के त्याग के उलटे अर्थ समझे हैं। उनके विचार में सफेद कपड़े उतार कर भगवे कपड़े पहन लेने से संसार छूट जाता है। यह भारी भूल है। संसार का त्याग करना या न करना हृदय की अवस्था पर निर्भर है। जो मनुष्य सांसारिक धन्दों में यहां तक गिरा हुआ है कि उसका हृदय उनसे एक क्षण के लिए भी पृथक नहीं हो सकता। तो उसको भगवे कपड़े भी कोई सहायता नहीं दे सकते। किन्तु ऐसी अवस्था में भगवे कपड़े पहन कर संसारी होने के अतिरिक्त प्रपंची और फरेबी बन जाता है। वैसे यदि विचार किया जावे, तो इस ससार को त्याग कर कोई मनुष्य जा भी कहां सकता किसी कवि ने कहा है:—

अच्छी कही है शेख ने, दुनिया को छोड़ कर ।
क्या इसको तरक करके, रहे आसमान पर ॥

जिन मनुष्यों का यह विचार है कि संन्यासाश्रम में प्रवेश करके फिर मोक्ष के लिए यत्न करेंगे और उस समय ज्ञान प्राप्ति हो जाएगी।

वे अति भूल करते हैं। वास्तव में मनुष्य वह है जो गृहस्थाश्रम में ही सन्यासाश्रम को प्राप्त करे। हां यह हम अवश्य कहते हैं कि जो मनुष्य अपने पहले तीन आश्रम अच्छी प्रकार गुजार चुका है किन्तु फिर भी उसे अपने कल्याण का मार्ग दिखाई नहीं दिया उसे अवश्य सन्यास ले लेना चाहिए। गंदगी के कीड़े की तरह आयु भर इस अनमोल हीरे जन्म को व्यर्थ ही नहीं खो देना चाहिये। संन्यास आश्रम बिना कारण ही नियत नहीं किया गया।

रामलाल—महाराज ! क्या भगवान से प्रार्थना करने से वह प्रार्थना पूर्ण होजाती है ?

सन्तमहात्मा:-भगवान का वह दरबार है कि जिससे मांगते भी सङ्कोच नहीं करना चाहिए। भगवान वह दाता है जो देकर पछताता नहीं। भगवान प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करते हैं। यदि वह प्रार्थना दिल से की हुई हो। पर कठिन तो यह है कि वह बड़ी कठिनता से होती है।

रामलाल:-महाराज ! प्रार्थना कैसे करनी चाहिए ?

सन्त महात्मा:-हे सर्व शक्तिमान-विश्व व्यापी प्रभु ! तू मुझे ऐसी सामर्थ्य शक्ति प्रदान कर, कि सिवाय तेरे किसी के आगे हाथ न फैलाऊँ।

२-हे ज्ञान के भण्डार ! मैं अज्ञानी हूँ। मुझे ज्ञान दे। मेरा हृदय प्रकाश से शून्य है इस में अपनी ज्योति जगमगा। मेरा हृदय विराम है इसमें शाँति और प्रसन्नता का फूल उगा।

३-मेरी वाणी में मिठास-आँखों में लज्जा हो। हाथ उदार हों, पाँव सम्भल कर रखें। हृदय में उत्साह और बुद्धि में सद्विचार हों।

४-हे सौन्दर्य के स्वामी ! मैं तेरे दर्शनों की भीख मांगता हूँ। मैं तेरे द्वार पर शीश झुकाये पड़ा हूं। अपनी अमृतमयी गोद का वास दे।

५—हे क्षमाशील प्रभु ! बुल बुल के लिये फूल। परवाने के लिए

दीप। चकोर के लिये चाँद। पतंगे के लिए प्रकाश परन्तु मेरे लिए बस तू ही तू है। तू ही मेरा सहारा बन।

६—हे बिगड़ी के बनाने वाले! मेरे बिगड़े कामों को सँवार। मुझे सत्यमार्ग दिखा। और शक्ति प्रदान कर, ताकि मैं इससे कभी न भटकूँ।

७—मेरे हृदय के स्वामी! मेरा हृदय तेरा आसन है, तू इसे स्वीकार कर और इस पर आकर विराजमान हो।

८—हे सर्वान्तर्यामी! जब तू कण-कण में पत्ते-पत्ते में विद्यामान है तो मेरा हृदय तुझ से खाली क्यों है? मैंने अपने हृदय का आसन शुद्ध करके तेरे लिए बिछा दिया है। अबतो आ।

९—हे शक्तियों के भण्डार! मेरे शरीर में शक्ति प्रदान कर। मेरी बुद्धि को अपने ज्ञानविज्ञान से प्रकाशित कर। मेरे हृदय में पवित्रता हो। मेरा आचरण सत्यमय हो और पवित्र विचारों पर चलने के लिए धृति प्रदान कर तथा मेरी हृदय ग्रन्थियों को खोल।

१०—हे नाथ! कोई धन चाहता है। कोई सन्तान, कोई सुन्दरता, कोई शान तथा मान, कोई मकान और कोई यशकीर्ति चाहता है। मैं इनमें से कोई वस्तु नहीं चाहता। मेरी तो कर जोड़ कर तेरे चरणों में शीश झुकाते हुए यही प्रार्थना है कि मेरे हृदय की आँखें खोल दे। मेरी बुद्धि को शुद्ध निर्मल ज्ञान से भरपूर कर दे। मेरी आतम में परमानन्द रस भर दे।

दस्ते सवाल? लाखों ही ऐबों का ऐब है।
ज़िस हाथ में यह ऐब है वह दस्ते गैब है॥

रामलाल:-महाराज! हमें क्या करना चाहिये?

संत महात्मा:—मुख से भगवान के नाम का जाप। मन में उनके स्वरूप का ध्यान। शरीर से दूसरों की सेवा करना, मनुष्य का परम कर्तव्य है। जब तक मन-वचन-कर्म भगवान की ओर नहीं लगते,

तब तक हमारी वह दशा पतन की ओर ही ले जाने वाली है। जब ये सब उसकी सेवा में लग जावें, तब वह उत्कृष्ट दशा है। वेद कहता है:—

ओ३म् अभित्वा र नो नूमो दुग्धाइव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्द् श मीशान मिन्द्र तस्थूषां ॥

अ० का० २० सू० १२१ मं १

भावार्थ:—जैसे दूध से भर कर गाय दूध देने के लिए झुक जाती है, वैसे ही मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों से भरपूर होकर परमेश्वर की महिमा देखते हुए नम्र होकर संसार में परोपकार करे।

राम लाल:—मनुष्य को दुःख देने वाली वस्तुएं कौन २ सी हैं?

सन्त महात्मा:—असमता, अहङ्कार, आत्मश्लाघा। ये दोष प्रभु का प्यारा बनते ही छूट जाते हैं।

राम लाल:—मनुष्य आवागमन के चक्र में कैसे आता है?

सन्त महात्मा:—१: कर्म बन्धन-कर्म फल की इच्छा रखने से कर्म बन्धन होता है। प्रश्न:–इससे छुटकारा कैसे होगा ? प्रभु प्रेमी मनुष्य प्रत्येक कर्म या तो प्रभु के निमित्त करता है या निष्काम भाव से (फलेच्छा के बिना) इस लिए जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा-सच्चे आनन्द अर्थात परमानन्द को प्राप्त होता है।

२—प्रभु प्रेमी का हृदय सच्चे प्रेम से भर जाता है। वह प्रत्येक प्राणिमात्र को प्रेम दृष्टि से देखता है। ईर्ष्या द्वेष से रहित होता है।

३—प्रभु का प्यारा यदि लीडर या मुखिया होगा तो, नम्रता, कोमलता, सरलता, उदारता, दया भाव के रङ्ग से रङ्गा हुआ होगा। उसे यश-कीर्त्ति की इच्छा नाम मात्र भी न होगी। वह सभा-सुसाईटियों में अपनी प्रशंसा अड्रैस (अभिनन्दन पत्र) इत्यादि स्वीकार करने से कोसों दूर रहेगा।

४—प्रभु प्रेमी का न हृदय थकता है न बुद्धि। न दृढता से हटता है। धीर तथा गम्भीर रह कर निराले ही आनन्द में मग्न रहता है

५—प्रभु का प्यारा जहां भी होगा, वहां ही हर समय आनन्द में मस्त होगा। वह यदि चल रहा है तो आनन्द मग्न होता है। बैठा है तो आनन्द से भरपूर। कार्य कर रहा है तो आनन्द में निमग्न। बिस्तर पर बैठा है तो आनन्द तरङ्गों में तैर रहा है।

६—यदि किसी सभा-सुसाईटी में प्रभु के प्यारे की पूछ ताछ नहीं हुई तो उसे कोईदुःख नहीं होता। यदि सभा में उसे प्रधान का आसन ग्रहण करने को दिया गया-तो उसे कोई विशेषता प्राप्त नहीं होती। वह प्रत्येकअवस्था में समरूप रहता है।

७—प्रभु प्रेमी यदि अकेला बैठा है—तो प्रभु सङ्गति में बैठा हुआ आनन्दमग्न रहता है। यदि लाखों की भीड़ में चला जाता है तो प्रत्येक प्राणी में उसी प्रभु के दर्शन करके प्रसन्नचित्त रहता है।

"मनुष्य-कर्तव्य और गुण"

उसी शक्स का हक निगहबान होगा ।
जोकरदार में अपने इनसान होगा ॥

१—मनुष्य नाम है मननशील होना-विचार कर कार्य करना नेकी व बदी भलाई वा बुराई की पड़ताल कर सकें।

२—जो शहद की मक्खी की तरह सब जगह से गुण ग्रहण करता है। साधारण मक्खी की तरह दो नहीं देखता।

३-मनुष्य वही है—जो न केवल भलाई के बदले भलाई करता है किन्तु बुराई के बदले में भी भलाई करता है।

४—मानवता इसी में है कि भलाई करके उपकार न जतावे—और न ही प्रत्युपकार की इच्छा रखें।

५—सच्चा मनुष्य वही है जिसका धन देने के लिए, ज्ञान अज्ञानता को दूर करने के लिए, जिसकी शक्ति निर्बलों के उत्थान के लिये और जिसका जीवन दूसरों की सेवा के लिये हो।

६-सच्चा मनुष्य अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहता और न

करता है। दूसरों की बुराई न करता है और न सुनना ही चाहता है।

७—अपने शत्रुओं के लिए भगवान से शुभ प्रार्थना करता है।

८—सच्चा मनुष्य वही है जिससे उसके विरोधी भी भलाई की आशा रखते हैं।

६—जो दूसरे की बुराई को और अपनी नेकीको भूल जाय।

१०—जो प्रेम प्यार का पुतला हो। जिसमें द्वेष न हो।

११—जो अपने दोषों पर-दूसरे के गुणों पर दृष्टि रखता है।

१२—जो मन-कर्म-वचन से सद्व्यवहार करने वाला हो।

१३—जो भला करके अपनी भलाई को प्रकट नहीं करता।

१४—जो प्राणि मात्र में अपनी आत्मा को देखता है।

१५—सत्य बोलना पूरी भक्ति है। प्राणिमात्र कीसेवा करना वास्तविक भक्ति है।

१६—कम खाओ। कम बोलो। एक परहेज़ सौ इलाज से उत्तम है। दृढ़निष्ठा धन की कुञ्जी है। और मितव्यता इसका ताला है।

१७—केवल कहने वाले न बनो, किन्तु कथन को करने वाले बनो। कवि कहता है:—

कहते सो करते नहीं-मुख के बड़े लबार।
काला मुख ले जायेंगे-साहब के दरबार ॥

करनी बिन कथनी कथे-अज्ञानी दिनरात।
कूकर ज्यों भौंकत फिरे-सुनी सुनाई बात ॥

१६—धन व्यय करने से घटता है परन्तु ज्ञान बढ़ता है।

२०—वास्तविकता सुन्दरता हृदय की पवित्रता में है।

२१—करज़ (ऋण) प्रेम की कैंची है। इससे बचकर सुख प्राप्त होता है।

२२–संसार में सबसे कठिन बात अपना सुधार करना है और सबसे सरल दूसरों की आलोचना।

२३–जिस मनुष्य को ऋण लेने तथा खुशामद की आवश्यकता नहीं वही बड़ा धनवान है।

२४—क्रोध यद्यपि शेर नहीं किन्तु शेर से भी अधिक हानि-कारक है।

सावधानता

१. चलते समय इधर उधर भूल कर न देखो किंतु आगे दृष्टिपात करते हुए चलो।

२. चलते समय दृष्टि सदा नीचे रखो ताकि ठोकर न लगे। न चलते हुए कोई वस्तु खाओ।

३. चलते हुए सड़क पर न थूको। न कूड़ा करकट फैंको।

४. जब किसी सभा में जाओ तो ऐसे स्थान पर बैठो जह से कोई उठा न दे।

५. सभा में बैठे हुए बिना अधिकार के न बोलो। गंभीरता से बैठो।

६. सभा में बैठे हुये अपने किसी अङ्ग को न हिलाओ। न है नाखुन काटो या चबाओ। और न दाढ़ी मूछादि के बाल उखाड़ो।

७. किसी के साथ बात करते हुए मुँह उसके वहुत निकट न जाओ।

८. बात चीत होते समय दूसरे की बात को न काटो।

९. जब दो प्रेमी परस्पर वार्तालाप कर रहे हों तो न तो उस दखल दो, और न ही उनकी बात सुनने का यत्न करो।

१०. जब भोजन खाने बैठो–तो भोजन की तरफ ध्यान रखे मौन होकर खाओ। मनन शक्ति बढ़ती है।

११. जब दूसरा व्यक्ति भोजन कर रहा हो तो उसके निक

मत जाओ । न ही खाने वाले पर दृष्टि डालो ।

(क) जब किसी से वार्तालाप कर रहे हो तो जेब में हाथ डाल कर खड़े न होवो ।

(ख) बात करते समय अपने शरीर के किसी अङ्ग पर बार २ अपना हाथ न रखो । न ही बार २ हाथ मिलाने के लिए बढ़ाओ । न ही हाथ से उसे धकेलो ।

(ग) स्वयं बात करते समय हसने न लग जाओ । अपनी ही बात न कहते जाओ, दूसरे की भी सुनो । अपने से जो माननीय दीखते हों उनका आदर सत्कार करो । ऐसे व्यक्ति के मिलने पर पहले स्वयं उसको नमस्कार करो । यदि ऐसा व्यक्ति सभा में आ जाए तो उसके लिए स्थान खाली कर दो ।

१२. किसी व्यक्ति से उसकी आमदनी या अन्य घरेलू गुप्त बात जानने के लिए प्रश्न मत करो ।

१३. अपनी दुख की कहानी किसी के सामने न खोलो, जब तक वह स्वयं न पूछे । जब किसी के घर जाओ, तो पहले दरवाज़ा खटखटाओ, जब तक अन्दर से बुलावा न हो, अन्दर मत जाओ ।

१४. (क) मनुष्य के तीन मित्र हैं । एक वे जो मृत्यु के समय तक साथ देते हैं । दूसरे वे जो शमशान तक उसके साथ जाते हैं । और तीसरे वे जो इसके पश्चात भी उसका साथ नहीं छोड़ते । मृत्यु तक के साथी सांसारिक धनैश्वर्य हैं । शमशान तक के सम्बन्धी तथा अन्य मित्रादि, और तीसरी अवस्था के साथी हैं किये हुए कर्म । जो मरने के पश्चात भी साथ जाते हैं ।

(ख) अच्छे भद्र महा पुरुषों की मृत्यु पर सारा संसार दुखी होता है । परन्तु बुरे मनुष्य के मरने पर सारा संसार सुखीहोता है ।

१५. उदार दयावान के घर का भोजन औषधीके समान होता है । परन्तु कृपण के घर का भोजन रोग रूप होता है ।

१६. बुद्धिमान के सम्मुख वाणी को, न्यायाधीश के सम्मुख आँख को, बड़ों के सम्मुख मन को वश में रखना चाहिये।

१७. उस व्यक्ति से प्यार की इच्छा न रखो जिससे तुम स्वयं प्यार नहीं करते।

१८. माननीय व्यक्ति के तीन लक्षण हैं:-(१) दूसरे मनुष्य उसे माननीय समझें। (२) वह स्वयं अपने आपको माननीय न जाने। (३) जब संकट व विपत्ति का सामना हो तो सत्य का त्याग न करे।

१९. गम्भीरता से बोलना, नीची दृष्टि रखना, मध्यम गति से चलना, सभ्यता के चिह्न हैं।

२०. न्याय से बढ़कर कोई हक नहीं। विचार से बढ़कर कोई मार्ग नहीं। कड़वा बोलने से बढ़ कर कोई तलवार नहीं, सत्य से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं।

२१. कम खाना, कम बोलना सफलता की कुञ्जी है।

२२. सात वस्तुओं के सिवाय शेष सब व्यर्थ समझी जाती हैं।

१. उतना ही भोजन जिससे जीवन स्थिर रहे।

२. उतनी ही मात्रा में पानी जिससे प्यास बुझ सके।

३. शरीर के ढकने योग्य वस्त्र।

४. उतना घर जिसमें रहन सहन हो सके।

५, केवल उतना ही ज्ञान जो क्रियात्मक हो सके।

६. उतना ही धन-जिससे आवश्यकताएं पूरी हो सकें।

७. ऐसी परमेश्वर की याद-जिससे उसके दर्शन हो सकें।

२३ सभा में वाणी की रक्षा करो। क्रोध में हाथ को रक्षा करो। भोजन शालामें पेट की रक्षा करो।

२४. यदि कोई आपके ऐसे गुणों की जो आप में न हों, प्रशंसा करे तो उस पर अभिमान मत करो; क्योंकि मूर्खों के कहने से ठीकरी सोना नहीं बन सकती।

२५. ईर्ष्या एक ऐसी अग्नि है जिसमें ईर्ष्यालु का सब कुछ जल कर राख हो जाता है।

२६. जब किसी धनी को पालकी में बैठे देखो तो, उसके ऐश्वर्य पर ईर्ष्या करने की अपेक्षा पालकी को उठाने वाले कहारों की अवस्था से तुलना करके परमात्मा का धन्यवाद करो।

२७. जो सुख संतोष में है वह संसार के किसी भोग में नहीं है।

२८. इच्छाओं अथवा कामनाओं को बढ़ा कर उनकी तृप्ति करने में शक्ति लगाना वैसा ही है जैसे अग्नि पर पफूस डाल कर बुझाने की कोशिश करना।

२९. ज्ञान यदि फूल है—तो आचरण उसकी गन्ध। गंध के बिना फूल बेकार है।

३०. ज्ञान यदि दरिया है तो आचरण उसकी नैया, जिस के बिना दरिया भयानक है।

३१. जीवन को सुखी बनाने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—(१) निश्चिन्तता (बे फिकरी)-(२) अभयता (निडरता)-(३) प्रसन्नता। बे फिकरी—ईश्वर-विश्वास से प्राप्त होती है। निडरता—निष्पाप जीवन से मिल सकती है। प्रसन्नता—सेवा और त्याग से मिलती है।

३२. सांसारिक पदार्थ स्वयं दुःख नहीं देते किंतु इनका मोह दुःख देता है।

३३. जो मनुष्य सूर्योदय के उपरान्त भी सोता रहता है, लक्ष्मी उसका साथ छोड़ देती है।

३४. किसी को पहले विश्वास दिलाना कि उसका काम अवश्य कर दिया जाएगा, परन्तु समय आने पर इनकार कर देना अति पाप है।

३५. जिस भाग्यशाली मनुष्य के हृदय को क्रोध की अग्नि हानि नहीं पहुँचा सकती। जोकिसी प्रकारके विषय-भोग तथा लोभ-

लालच में नहीं फंसता, जिसकी दृष्टि में सारे भोग तिनके के समान हैं —वह आदर्श मनुष्य तीनों लोकों में विजय प्राप्त करता है।

३६, हमारे भले तथा बुरे कर्म परछाईं की भांति हमारे साथ लगे रहते हैं।

३७. संकट-विपत्ति सब पर आती है। बुद्धिमान हंसकर तथा मूर्ख रोकर काटता है।

३८. नींद क्या है ? कुछ घण्टों की मृत्यु। और मौत है सदा की नींद।

३९. वाणी से बुरा न कह। कान से बुरा न सुन। आँख से बुरा न देख। पाँवों से बुरे स्थान पर न जा। हाथ से बुरा काम न कर। फिर देख खुशी और आनन्द तेरे सामने हाथ बाँधे खड़े रहेंगे।

४०. जब कुत्ता काटने को दौड़े तो डण्डे से उसका सामना मत करो किन्तु जरा बैठ जाओ। संसार में अकड़ने वाले सदा ठोकरें खाया करते हैं।

४१. विद्या तभी फली भूत होती है जब गुरु का आदर-सत्कार सेवा हृदय की लग्न से की जावे। जिस प्रकार वृक्ष की शाखा फल आने पर झुक जाती है। इसी प्रकार तुम नम्र हो कर रहो।

४२. यदि तुम चाहते हो—संसार तुम्हारे आगे झुके, तो पहले स्वयं झुकना सीखो।

४३. धर्म-ईमान की जड़ फूट काटता है। बुद्धि क्रोध से समाप्त होती है। धन का नाश दुरुपयोग से होता है। मांगना मान सम्मान को मिट्टी में मिला देता है। कवि लिखता है:—

भलाई कर ज़माने से, अगर अपना भला चाहे।
ख़ुदाई के दिलों में घर, बना ले गर ख़ुदा चाहे।

४४. कर्म करना हमारा कर्तव्य है और कर्म करने तक ही

हमारा अधिकार है। फल कैसा हो ? कितना हो ? कब हो ? इस पर ध्यान न दो, अन्यथा उदासीनता प्राप्त होगी।

४५. यदि मनुष्य कर्म करना कर्तव्य समझ ले और फल के बोझ को अपने ऊपर न लाद कर प्रभु के आसरे पर छोड़ दे, तो उस की बुद्धि और हृदय शाँत रहते हैं।

४६, दो हाथों से कमाओ सौ हाथों से बाँट दो। रब से माँग, सब से न माँग।

४७. यदि किसी को गुड़ नहीं दे सकते, तो न सही, परन्तु गुड़ जैसी बात तो करो।

४८. यदि संसार में जीवित रहना चाहते हो तो निम्न बात अपने अन्दर उत्पन्न करो—

मधुर भाषी बनो। सहानुभूतिशील, प्राणिमात्र से प्यार करने वाले और सदाचारी बनो।

४९. इन छः व्यक्तियों से हानि नहीं हो सकती—

बुद्धिमान मित्र, आज्ञाकारी पुत्र, सुशील पत्नी. दयावान स्वामी, सोचकर बोलने वाला मनुष्य, सोचविचार के पश्चात कार्य करने वाला व्यक्ति।

५०—अधर्म की कमाई दस वर्ष तक रहती है। ग्यारहवाँ वर्ष आरम्भ होते ही पहली कमाई हुई धन दौलत समाप्त हो जाती है।

५१. अपना हित चाहने वाला छः बातों का त्याग करे—

ज्यादा सोना, अभिमान, भय, क्रोध, आलस्य, टाल मटोल का अभ्यास।

५२. अधिकतर मनुष्य उन प्राणियों से घृणा करते हैं, जोउनके दोष बतलाते हैं यद्यपि घृणा करनी चाहिये अपने दोषों और त्रुटियों से-

५३. जो मनुष्य बिना कहे समझ जाये उसे देवता जानो, जो कहने पर समझ जाय उसे मनुष्य कहो। जो कहने पर भी न समझे

उसे गधा समझो।

५४. सुनना चाहते हो तो—परमात्मा के गुणों और दुःखियों की पुकार को सुनो।

५५. पुराना ईंधन जलाने को, पुराना चावल खाने को, पुराना मित्र विश्वास करने को, पुराना ग्रन्थ पढ़ने को लाभदायक होता है।

करो दोस्तो पहले आप अपनी इज़्ज़त।
जो चाहो करें लोग इज़्ज़त ज्यादा॥

——

फंसो न भूल के, वसवसओं के फंदों में।
ख़ुदा की शान को देखो, ख़ुदा के बंदों में॥

——

दौलते दुनिया पै इतराना, छछोरी बात है।
चार दिन की चाँदनी, फिर अन्धेरी रात है॥

——

मेरा दिल मेरा काबा है, मेरा सीना सनम खाना।
न हिन्दू हूं, न मुस्लिम हूँ, मैं दिलवर का हूँ दीवाना॥

——

बहुत लोग बातों में लुकमान हैं।
अमल में जो देखो तो नादान हैं॥

——

गफलत के जहालत के, ज़माने को भुला दे।
तकदीर के बेकार बहानों, को भुला दे॥

——

मैदाने तरक्की में शबे-रोज़ बढ़ा चल ।
घबरा न सऊबत से, चल और उड़ा चल ॥

— —

दहन से जो बात निकले, वो निकले बा असर होकर ।
सदफ़ से जैसे निकले, आब का कतरा गौहर होकर ॥

निम्न बातें भूल जाओ

१. यदि किसी से भलाई या नेकी की है तो उसे भूल जाओ ।

२. यदि किसी ने तुम्हारे साथ बुराई की है या उससे आपको कष्ट पहुँचा हो तो उसे भूल जाओ ।

३. जो समय बीत गया है उसे भूल जाओ ।

४. जो संकट या विपत्ति टल चुकी है उस को भूल जाओ ।

५. जो हानि हो चुकी है तथा जो दुःख-कष्ट बीत गया है उस को भूल जाओ ।

६. जब प्रभु शरण में बैठो तो सांसारिक धन्धों को भूल जाओ ।

७. भलाई या सेवा करने के लिए ज़ात पात के प्रश्न को भूल जाओ ।

८. जब किसी काम को करो तो अन्य बातों को भूल जाओ ।

९. मित्रों की त्रुटियों और दोषों को भूल जाओ ।

१०. माता पिता कोई कड़ा शब्द कहें तो उसे भूल जाओ क्यों कि वे आपके कल्याण के लिए ही कहे जाते हैं ।

११. सांसारिक मान-सम्मान को भूल जाओ । क्योंकि यह अस्थिर वस्तु है ।

१२. यदि तुमने दान दिया है या किसी की सहायता की है तो उस को भूल जाओ ।

१३. जब किसी सन्त महात्मा के पास या धर्म स्थान पर जाओ तो सांसारिक पद (हैसीयत) को भूल जाओ।

"निम्न बातों को स्मरण रखो"—

१. जिस परमपिता परमात्मा ने तुम्हें यह सुन्दर शरीर, बुद्धि, अनेकों सांसारिक पदार्थ, सूर्य-चाँद, वायु-जल, भूमि-आग, फूल-फल और नाना प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान किये हैं उसे सदैव याद रक्खो।

२. जिन माता पिता ने तुम्हें जन्म देकर तुम्हारा पालन-पोषण करते, नाना प्रकार के संकट सहन करते हुए-तुम्हें हर प्रकार से योग्य बनाया उनके उपकारों को याद रखो।

३. जिसने तुम्हारा भला किया हो उसे याद रखो।

४. मृत्यु (जो तुम्हारे साथ उसी दिन से पीछे लगी हुई है जिस दिन से तुम उत्पन्न हुए हो) को याद रखो।

५. संसार में जब तुम आये थे अपने साथ कुछ न लाये थे। जब जाओगे खाली हाथ जाओगे। इसको याद रखो।

६. तुम्हारे साथ-तुम्हारे शुभ कर्म तथा आचरण मृत्यु के पश्चात भी जाएंगे। इस बात को याद रखो।

७. याद रखो—कि आत्मा अविनाशी है। इसको न कोई जला सकता है, न गला सकता है, न काट सकता है।

८. शरीर नाशवान है। अस्थिर है। केवल भगवान की सत्ता ही अमर है। शेष सब नाशवान हैं इसे याद रखो।

९. उस समय को याद रखो-जब तुम माता के गर्भ में उलटे लटके हुए थे, उस छोटी सी कोठड़ी में गन्दगी के अन्दर पड़े हुए थे और भगवान से प्रार्थना करते थे कि इस बार मुझे यहां से निकाल। फिर मैं ऐसा जीवन व्यतीत करूँगा जिससे आवागमन (जन्म-मरण) के चक्र में न आना पड़े।

१०. याद रखो—कि किये हुए कर्म नेक हों अथवा बुरे शुभाशुभ

कर्मों का फल अवश्य ही मिलता है। अतः असत् कर्मों को त्याग कर सत् कर्मों में प्रवृत्त होवो।

११. याद रखो--ये धन माल और यौवन नित्य रहने वाले नहीं हैं इसलिए न तुम इन पर मान करो, न इनका दुरुपयोग करो।

१२. स्मरण रखो—संसार में मान प्रतिष्ठा वही मनुष्य प्राप्त कर सकता है जो सदाचारी, परोपकारी, पुरुषार्थी और सत्यवादी हो।

१३. याद रखो—कि यद्यपि तुम कर्म करने के लिएं स्वतन्त्र हो परन्तु फल भोगने के लिए परतन्त्र हो अतः निष्काम कर्म ही श्रेष्ठ कर्म हैं।

१४. जिन सम्बन्धियों के लिए तुम पाप करते हो वे आपके पापमय कर्मों को नहीं पाएंगे। तुम्हें स्वयं ही उनका दण्ड भुगतना होगा। किसी ने कहा है:--

एकः पापानि कुरुते फलं भुंक्ते महाजानाः।
भोक्तारो विप्र मुचयन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥

अर्थात:—एक पाप करता है फल खाने वाले सब होते हैं। परन्तु दण्ड आप भुगतता है कोई साथी धर्म के अतिरिक्त नहीं होता।

अकेला आया अकेला जाना। न होगा हरगिज़ कोई भी साथी।
काम आएगा सफर में तोशा। जमा करेगा जो स्वाब करके ॥

———

क्या क्या दुनियां से साहिबे माल गये।
दौलत न गई साथ न इतफाल गये ॥
पहुँचा के लेहद तक आये सभ लोग।
अगर साथ गये तो एमाल गये॥

"मधुर वाणी बोलो"

दहन से जो बात निकले, वो निकले बा असर हो कर।
सदफ़ से जैसे निकले, अब्र का कतरा गौहर हो कर ॥

परमात्मा ने मनुष्य के अन्दर दूसरों को वश में करने के लिए कई शक्तियां प्रदान की हैं। उनमें से बोलने का गुण एक बड़ी शक्ति है। जो मनुष्य ठीक बोलने का ढंग जानता है वह दूसरों के मन को अवश्य जीत लेता है। और उसे अपना प्रिय मित्र बना लेता है। ठीक बोलचाल से, अफसर मातहत को, मातहत अफसर को, मालिक सेवक को, सेवक मालिक को, पत्नि-पति को, दुकानमार-ग्राहक को, और ग्राहक-दुकानदार को, अपना विश्वासी बना लेता है। मधुर वाणी से वे कार्य पूर्ण होते हैं, जो धन तथा बाहु बल से नहीं हो सकते। कोमल मीठे और शिष्ट वार्तालाप के शब्द जादू जैसा प्रभाव डालते हैं।

यदि दूसरे के हृदय को मुट्ठी में लाना चाहते हो, यदि अपना कार्य सिद्ध करवाना चाहते हो तो शहद-शक्कर के सम्मान मधुर भाषी बनो। अपनी बात न कहते जाओ, दूसरे की बात को भी सुनो। जब तक दूसरा व्यक्ति अपनी बात समाप्त न करे, मध्य में मत बोलो, अपने मुँह मियां मिट्ठू बनना मूर्खता है।

वाणी मनुष्य को तख्त पर बिठाती है। यही तख्त से गिराती है। डूबते को तारती है। तैरने वाले को डुबोती है। मित्र को शत्रु और शत्रु को मित्र बना देती है।

गर बदन पर जख्म हो तलवार का,
अच्छा हो जाये गर कीजिये दवा।
पर जो घावो हो बुरी तकरीर से,
वह नही भरता किसी तदबीर से ॥

कहावत है "जवां शिरी, मुलक गीरी" अर्थात मीठा बोलने वाले के पास इतनी शक्ति है कि बिना सेना के मुलक को विजय कर सकता है। शास्त्रकारों ने मधुर भाषी को देवता और दुर्वचन बोलने वाले को राक्षस कहा है। मन से उतर कर दूसरा भाग वाणी है। जो इसको वश में कर लेता है। शेष इन्द्रियां स्वयं इसके वश में हो जाती हैं। मनुष्य की वाणी मित्र भी है—शत्रु भी। प्रेम भी है—घृणा भी। कोमल भी है—कठोर भी है। सुख का कारण भी है—दुःख का भी। आनन्द भी देती है—क्लेश भी। यह फूल भी है—कांटा भी, तथा अमृत भी है और विष भी है। जब अपशब्द, निन्दा, चुगली, असत्य बोलती है तो अपवित्र होती है। और जब मधुर बोलती है और सत्य कहती है तो यह पवित्र होती है। वाणी जब शान्ति प्रद शब्द बोलती है तो जल की भान्ति ठंडक पहुँचती है। जब जले-भुने खोटे शब्द बोलती है तो अग्नि की भान्ति जलाने वाली होती है। वाणी-पानी से बनी है। पानी जहां होगा वो खेत हरा-भरा होगा, इसलिए ऐसे शब्द बोलो जो प्रेम से भरपूर हों।

"विषय भोग का परिणाम"

जो मनुष्य विषय वासनाओं में अन्धा हो रहा है। वह नेत्र-हीन पुरुष से भी बुरा है। क्योंकि आंखों का अन्धा तो केवल आंखों से ही नहीं देख सकता, परन्तु विषय-विकारों का अन्धा मन और बुद्धि से भी अन्धा होता है। विषय विष से भी बुरे होते हैं क्योंकि विष तो एक बार ही मार देता है परन्तु विषय क्षयरोग की भान्ती चिमट जाते हैं। भोगों का भोगना तो पशु जीवन ही है। मनुष्य जीवन का काम तो विषय वासनाओं पर काबु पाना है। मनुष्य बनो। पशु मत बनो। विषय भोगते समय मनुष्य को सुख प्रतीत होता है परन्तु इसका परि-णाम दुःखदायी होता है। विषय-वासना के उत्पन्न होने के कारण अप-वित्र विचार ही हैं। इस लिये मन को दृढ़ बनाओ और पवित्र विचार

धारण करो। गन्दे २ चित्र देखना तथा विषय विकार बढ़ाने वाली पुस्तकें,नावल इत्यादि पढ़ना भी विषय-वासना की उत्पत्ति के कारण हैं। विषय विकार के विचार उस हृदय में आते हैं जहां भगवान के नाम का जाप न हो रहा हो। क्योंकि छोटे २ पशु वहां ही जाते हैं जहां शेर न बैठा हो। सांप का विष तो औषधियों द्वारा दूर हो सकता है परन्तु विषयों का विष नाश किये बिना नहीं रह सकता।

"आदर्श बनो"

आदर्श जीवन बनाने के लिए आवश्यकता है—प्रेम, सदाचार, पवित्रता, दयालुता, सन्तोष, हर्ष, सरलता, नम्रता, सत्य और स्वार्थ त्याग।

ये गुण उस मनुष्य में आ सकते हैं जो पूरी लगन-विश्वास (भरोसे) से इन को प्राप्त करने के लिए हर समय यत्न करता है। झूठ का सुनना भी उतना बुरा है जितना कि झूठ बोलना। किसी की बुराई अर्थात चुगली सुनना भी उतना ही बुरा है जितना कि चुगली करना।

किसी के कहने बहकाने से किसी दूसरे व्यक्ति के सम्बन्ध में स्थिति प्रकट मत करो।

आंख और कान का अन्तर केवल चार अंगुल से अधिक नहीं है, परन्तु कानों से सुनी और आंखों से देखी बात में सहस्रों कोस का भेद है।

अपनी बुराई सुनकर विचारों की वास्तविकता क्या है? यदि उसने असत्य कहा है, तो तुम्हारा कुछ बिगड़ नहीं सकता और यदि उसने सत्य कहा है तो अपना सुधार करो।

छोटी २ बुराइयों पर ध्यान न देना वह चट्टान है—जिससे बहुत से नवयुवक टक्कर खाकर सदा के लिये चकनाचूर हो जाते हैं। पैसों के बचाने से ही रुपये बच सकते है।

भद्र पुरुष गाय की भान्ति हैं, जो घास खाकर दूध देती है।

भद्र पुरुष सर्प के समान हैं, जो दूध पीकर विष देता है।

पाप से घृणा करो न कि पापियों से।

भक्त का हृदय भगवान का आसन होता है।

मूर्ख संसार पर आश्रित रहता है और ज्ञानी पर सारा संसार आश्रित रहता है।

जो मनुष्य दूसरों के दोष तुम्हारे आगे प्रकट करे वह तुम्हारे दोष दूसरों के आगे अवश्य रक्खेगा।

लेटे २ खाना और चलते-फिरते कुछ न कुछ खाते रहना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। सभ्यता के विरुद्ध है। दरवाज़े में बैठकर भी न खाओ। यद्यपि नशा सर्प नहीं, परन्तु सर्प से अधिक भयानक है। यद्यपि पाप विष नहीं परन्तु विष से अधिक हानिकारक है। अपनी सन्तान को यदि तुम उत्तम देखना चाहते हो तो सदा अपने आप को उत्तम रखो। स्त्री घर की नींव है। मन्दभागी हैं वे मनुष्य जिनके घर नौकरों की दया पर निर्भर है।

पहाड़ से गिर कर मनुष्य फिर उठ सकता है, परन्तु दृष्टि से गिर कर मनुष्य कभी नहीं उठ सकता।

कथनी—करनी वाला मनुष्य संसार में पूजा जाता है। उदार हृदय वाला मनुष्य संसार को अपना परिवार समझता है।

शत्रु एक भी बहुत है परन्तु मित्र बहुत से भी थोड़े हैं, किये पापों का प्रायश्चित करना उनको मिटा देता है। अपने शुभ कर्मों पर अभिमान करना उनको बरबाद कर देना है। मनुष्य अपनी रफ़्तार (गति) और गुफ़्तार (वाणी) से पहचाना जाता है। दुर्व्यसनी बुरा है। परन्तु दुर्व्यसन प्रकट करने वाला उससे भी बुरा है।

बुराई की पहचान होती है क्या।
बुरे जिसके हैं फ़ेल वो है बुरा॥

ज्ञान का शत्रु अभिमान, बुद्धि का शत्रु क्रोध, सन्तोष का शत्रु

लोभ, और सत्य का शत्रु भय होता है।

जो मनुष्य स्त्री की सुन्दरता देख कर उस से विवाह करता है वह मूर्ख है। जो धन के लिए विवाह करता है वह लोभी है। और जो उसके आन्तरिक गुणों को लक्ष्य रखकर विवाह करता है वह बुद्धिमान पति है।

जो अच्छी बात सुनो, लिख लो। जो लिख लो उसे कण्ठस्थ कर लो। जो कण्ठस्थ कर लो उस पर आचरण करो।

पुनः दूसरों को प्रकट करो—ओ३म् शम्—



आ३म्

दूसरा उपदेश

सुधारक

ओ३म् ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनुष्या दारे स्याम दुरितस्य भूरे।
भूरि चिद्धि तुजातो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत ॥

ऋ० मं० ३ सू० ३९ मं० ८

भावार्थः—वे ही श्रेष्ठ पुरुष हैं जो दूर और समीप में विद्यमान पुरुषों में कृपा का अनुसन्धान-विद्या और उपदेश करके बड़े कठिन बोध की सरलता को उत्पन्न करें। वे ही सब लोगों के सत्कार करने योग्य हैं।

आजकल दूसरों को बुरा कहना एक दूसरे के दोष निकालना और एक दूसरे की आलोचना करना एक प्रथा सी बन गई है। यदि कहीं हिन्दुओं की सभा लगी हो तो वहां यही सुनेंगे मुसलमान सदा ज्यादती करते हैं। प्रत्येक स्थान पर दंगे की नींव यही हैं। हिन्दुओं की बहु-बेटियों पर हाथ उठाते हैं। इन्हें भारत से प्रेम नहीं है और सदैव अरब के ही स्वप्न लेते रहते हैं। और यदि मुसलमानों की सभा हो रही हो तो वहां से आवाज़ आयेगी—हिन्दू सदैव हमको अधीन रखते हैं और हमें अपना सेवक बना कर रखना चाहते हैं। अपनी ही सभ्यता का रंग हम पर चढ़ाना चाहते हैं। हम से छूत-छात करते हैं। देश में अपना ही राज्य जमा कर हमें समाप्त करना चाहते हैं। सब लोगों की देखा देखी कुछ समय से सिक्खों ने भी शोर मचाना आरम्भ कर दिया है कि हिन्दू अथवा मुसलमान दोनों हमारे शत्रु हैं। हम अल्पसंख्यक हैं इसलिए ये लोग हमारी परवाह नहीं करते। नौकरियों, विधानसभाओं और अन्य सदस्यताओं पर अपना ही अधिकार जमाना चाहते हैं।

इसके पश्चात अन्य अल्पसंख्यक जातियों ने भी शोर मचाना प्रारम्भ कर दिया है। यदि हिन्दुओं से पूछा जाय तो वे मुसलमानों को दोषी ठहराते हैं। और मुसलमान हिन्दुओं को दोषी बताते है इत्यादि। परन्तु वास्तविक दृष्टि से देखा जाय और विचार किया जाय तो यह उत्तर होगा कि फसादी न हिन्दू हैं, न मुसलमान, न सिक्ख, न ईसाई, किन्तु ऐसे व्यक्ति हैं जिनका न धर्म है, न ईमान—जिनको कह न सकें इनसान—बल्कि होते हैं हैवान। न सच्चा हिन्दू लड़ता है न सिक्ख, न मुसलमान, न ईसाई, जो लड़ते हैं उनका कोई धर्म नहीं। वे अपने धर्म-कर्म से अनभिज्ञ हैं और धर्म की शिक्षा से कोसों दूर। हिन्दुओं के वेद-शास्त्र, उपनिषद और गीता में लिखा है कि मनुष्य को उचित है कि वे प्रत्येक को मित्र की दृष्टि से देखे और यह प्रार्थना करे

"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे ॥" यजु० अ० ३६मं० १८

कि दूसरे भी उसे मित्र की दृष्टि से देखें। ईशोपनिषद में लिखा है कि—उसी मनुष्य के दुख-दर्द दूर हो सकते हैं जो सर्व प्राणीमात्र को अपने में अपने आपको उन में देखता है। गीता में लिखा है कि—वास्तविक मनुष्य वह है जो किसी से घृणा न करे, सब का मित्र हो, सब पर दया करे। अब जो हिन्दू इन गुणों से दूर हैं, वह वेद और इन तीनों शास्त्रों के मानने वाला नहीं कलहवा सकता।

अब मुसलमानों को लीजिए—इनके लिए रसूले ख़ुदा का आदेश है "सर्व प्राणी मेरा परिवार है। जो इससे प्रेम करता है वही ख़ुदा से प्रेम करने वाला होता है। फिर आदेश किया है कि मोमिन वही कहला सकता है जो अपने पड़ौसी से सद्व्यवहार करता है और मुसलमान वही कहलाता है जो मनुष्यों के साथ वैसा ही प्रेम और प्यार करता है जैसा कि वह अपने लिए चाहता है। अब जो मुसलमान इन नियमों पर आचरण नहीं करता, क्या वह मुसलमान कहलाने का अधिकारी हो सकता है ?

इसी प्रकार से गुरू ग्रन्थसाहब के धनासारी महल्ले में लिखा है:- न कोई मेरा शत्रु है, न वैरी। प्रत्येक प्राणिमात्र के अन्दर वह विद्यमान है। हमने सब को मित्र बना लिया है और सारे हमें अपना मित्र समझते हैं। अब जो सिक्ख इस के अनुसार आचरण कहता है वह गुरू ग्रन्थ साहब के मानने वाला सच्चा गुरमुख कहला सकता है। अन्यथा नहीं।

इसी प्रकार अंजील में लिखा है कि जो मनुष्य दूसरे मनुष्य से घृणा-द्वेष करता है वह प्रभु प्रेम की डींग मारता है। परमात्मा स्वयं प्रेम है। जो मनुष्य प्रेम-प्यार के गुणों से भरपूर है वहीपर मात्मा से प्यार करने वाला कहा जा सकता है। यदि कोई ईसाई अंजील के इस आदेश पर आचरण नहीं करता तो वे ईसाई कैसे हो सकता है ?

इसलिए जो भी लड़ने वाले मनुष्य हैं वे किसी भी धर्म से सम्बन्ध रखने वाले नहीं। वास्तव में जो सच्चा हिन्दू या सिक्ख या मुसलमान है वह फसादी-लड़ाका या शरारती नहीं हो सकता। दंगा फसाद कराने वाले धूर्त (गुण्डे) होते हैं। और ऐसे व्यक्ति सभी सम्प्रदायों में होते हैं। जिनका उद्देश्य दंगा कराना होता है, उनकी जीवका साधना यही है कि फसाद हो, लूट-खसूट हो और वे अपनी पेट पूजा के लिए माल उठा सकें। अब कुछ नीचे लिखी घटनायें पढ़िये—

१. महाराजा कपूरथला ने बहुत धन व्यय करके एक जामा-मस्जिद कपूरथला में विलायत से कारीगरों को मंगा कर दमशक की मस्जिद के समान बनवाई। जो दर्शनीय है। इस पर कई लाख रुपये खर्च हुए।

२. रियासत हैदराबाद में एक स्थान है जिसे तंग कहते हैं। वहां एक मौलवी साहब रहते थे जिन की दो नौजवान विवाह योग्य कन्यायें थीं। लड़कियों की माता का देहान्त हो चुका था। कोई भाई न था। मौलवी साहब भी अकस्मात् रोगग्रस्त होकर चल बसे। मरने

से पूर्व अपनी दोनों कन्याओं को अपने पड़ोसी महाशय रामचन्द जी आर्य को सौंप गये। चुनांचे महाशय रामचन्द्र ने इस्लामी रिवाज के अनुसार उन दोनों का विवाह दो नवयुवक मुसलमानों के साथ अपनी जेब से खर्च करके कर दिया।

३. मुलतान चूनाबन में श्रीमान पं० चेला लाल जी वैद्य थे (इस समय हिसार में रहते हैं) मुहर्रम के दिनों में हिन्दु-मुसलिम दंगा हो गया। पं० चेला लालजी बोहड़ दरवाज़ा के बाहर एक रोगी को देखकर दरवाज़े के अन्दर गये तो मुसलमानों ने उन पर हमला कर दिया। वे भाग पढ़े। एक कूचा में मुड़े तो एक मुसलमान ने कहा—पं० जी मेरे मकान के अन्दर घुस आओ। पण्डित जी तुरन्त उस मकान में प्रविष्ट हो गये। अन्दर से किवाड़ बन्द कर दिये गए। अब मुसलमानों का जमघट (समूह) दरवाजे पर आकर पुकारने लगा कि इस काफ़िर को बाहर निकालो। परन्तु उस मुसलमान ने जवाब दिया—मैं पण्डित जी पर वार न होने दूंगा। पहले स्वयं और अपने परिवार को इन की रक्षार्थ बलिदान करूंगा फिर तुम चाहे इसे मार देना। और यह भी कहा—कि ऐसे सहृदय परमात्मा के सच्चे भक्त, जो न हिन्दु-मुस्लिम एकता के पक्षपाती, और हमारी बहु-बेटियों को अपनी सन्तान के तुल्य समझने वाले व्यक्ति को अपने हाथों आप लोगों के हवाले करके क्या मैं दोज़ख की आग (नरकाग्नि) में पड़ूं। ये बातें सुन कर उन लोगों में से कई कहने लगे—भई! बात पूर्णतया सत्य है। कि यह सज्जन सहानुभूतिशील और सत्यनिष्ठ व्यक्ति हैं। सभी लोग चुप-चाप शान्त होकर वापस चले गये। वह मुसलमान रात को सुविधापूर्वक उन्हें घर पहुंचा गया। उसी दिन से पं० चेला लाल जी ने किसी भी मुसलमान से फीस नहीं ली।

इन घटनाओं को पढ़ने के पश्चात क्या मुसलमानों या हिन्दुओं को यह अनुभव हो सकता है कि कोई धर्म ईर्ष्या-द्वेष सिखाता है। सत्य

तो यह है कि स्वार्थी लोग चिनगारी डाल देते हैं और नादान भारतवासी उनके दम में आ जाते हैं। वही बात है—

ये तिफ़ले नादान ग़रीके गफ़लत, हवाए जिल्लत में तन रहे हैं,
समझ नहीं है, नज़र नहीं है, बनाए जाते हैं बन रहे हैं ॥

सज्जनों। अब कहीं दो सम्प्रदायों का दङ्गा हो तो उसे शान्त कराने के लिए दोनों पक्षों में से ऐसे नेक और शुद्धहृदयी प्रभु प्रेमियों की आवश्यकता होती है। जो प्राणीमात्र के लिए प्रेम-प्यार की भावना रखते हैं। कवि लिखता है—

सच तो है इन्सान उन्हीं का नाम है।
रहम खाना जिनका दायम काम है ॥
जान पर अपनी ही दुःख लेते हैं वो।
कब अज़ीयत और को देते हैं वो ॥

जिस तरह बद की बदी जाती नहीं।
नेक के ज़ी में बदी आती नहीं ॥
नीम में हरगिज़ नहीं लगते अनार।
नाशपाती से फले क्यों कर चनार ॥
सेब गूलर में फलें किस तरह।
आम कीकर में लगें किस तरह ॥
देख रङ्गी है बदी का बद असर।
नेक नेकी का है फल ऐ-बे खबर ॥

दो आदमिओं के सिर पर चोटी हो तो हम दोन
कहेंगें। परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि वास्तव में वे दोनों
या उन में से कोई एक। ऐसे ही हम अन्य भाईयों को मुसलमान
हिन्दू-ईसाई आदि तो कह सकते हैं परन्तु यह सोच-विचार के
कह सकेगें कि इन में से कौन २ वास्तविक मनुष्य हैं ? बगल
राजहँस एक ही रंग के होते हैं। परन्तु एक गन्दी मछलियां
और दूसरा मोती चुगता है। कौआ और कोयल भी एक ही
चाल के होते हैं, परन्तु एक को लोग देखना भी नहीं चाहते औ
की मधुर वाणी पर मोहित हो जाते हैं। काँच और मोती
एकही जैसे होते हैं, परन्तु उनके मोल- तोल में कितना अन्तर
लिये किसी के रंङ्ग-रूप मोटे-ताजे शरीर को देख कर यह
करना कि यह मनुष्य हैं, उचित नहीं। मनुष्यत्व (मानवता)
गुणों से परखी जाती है और वे गुण अन्दर होते हैं।

इस प्रकार से हिन्दू-मुसलमान-सिक्ख प्रत्येक सम्प्र
जितने माननीय व्यक्ति हैं, सब ने एक ही प्रकार से
मिलाप और निष्काम कर्म करने की शिक्षा दी है। हम लो
अज्ञानी हैं कि हम इनकी आज्ञाओं का उल्लंघन करके अपनी
करना चाहते और लड़ते-झगड़ते रहते हैं। किसी भी सम्प्रदाय
तथा पवित्रात्मा ने इस बुरे नियम का अनुमोदन नहीं किया, ब
की है। तो भी हम उनके विरूद्ध आचरण करते हैं। अतः न
में उन्नति कर सकते हैं और न हम परमात्मा को प्रसन्न कर
हमारी वर्तमान अवस्था का एक कवि ने इस प्रकार वर्णन कि

न अब शेख़ पर, ब्राह्मण को भरोसा।
न अब नाज़ है, शेख़ को ब्राह्मण पर॥

यह नफ़रत की तारिकियां, तोबह तोबह ।
धूआँ छा रहा है, फ़िज़ाए वतन पर ॥
गरीबी की ऐसी तसावीर देखी ।
न खाने को टुकड़ा-न कपड़ा बदन पर ॥

एक बात समझ में नहीं आती कि जब हिन्दू चाहते हैं कि
मान न रहें और मुसलमानों की इच्छा है कि हिन्दू समाप्त हो
। यही हाल सिक्ख-ईसाई अन्य सम्प्रदायों का है । यदि इन सब की
। पूरी हो जावे, तो बाकी रहेगा कौन ?

न दुनिया में जब कोई इन्सान होगा ।
कहां कोई हिन्दू मुसलमान होगा ॥
कहां सिक्ख रहेगा कहां या ईसाई ।
समझ में न हरगिज़ है यह बात आई ॥
बचाया जो चाहो तो इनसान बचाओ ।
मरती हुई इन्सानियत को जिलाओ ॥

निःसन्देह-वर्तमान अवस्था में हमारा वर्ताव अति हानिकारक
जिसका परिणाम अति दुःखदायी हो रहा है । और अभी और
क बुरा होने की संभावना है । वस्तुतः बात यह है कि जो मनुष्य
को बुरा जानता है वह अपने पूर्वजों को अपमानित करता है ।

अच्छा नहीं कुछ भी, गर इन्जाम बुरा है ।
इन्जाम बुरा जिसका है वो काम बुरा है ॥
मुसलमान ही नहीं, वो जिसे हिन्दू से हो नफरत ।
हिन्दू नहीं, समझे जो इसलाम बुरा है ॥

कवि लिखता है:—

हैं जन्म् लेते जगह में एक ही ।
एक ही पौधा उन्हें है पालता ॥
रात को चमकता इन पह चाँद भी ।
एक सी ही चान्दनी है डालता ॥
मेंह इन पर है बरसता एक सा ।
एक सी हवाएँ उन पर है वहीं ॥
पर सदा ही देखते हैं हम यही ।
ढङ्ग उनके एक से होते नहीं ॥
छेद कर काँटा किसी की उँगलियाँ ।
फ़ाड़ देता है किसी का बड़ बसन ॥
फूल लेकर तितलियों को गोद में ।
भौर को अपना अनूठा रस पिला ॥
निज सुगन्धि और निराले रंग से ।
है सुला देता कलि को भी खिला ॥
है खटकता एक सब की आंखों में ।
दूसरा है सोहता हर सीस पर ।
किस तरह हालात इन को लाभ दें ।
जो किसी में हो जन्म से ही कसर ॥

———

इस लिए चाहे हम हिन्दू हैं या मुसलमान, सिक्ख या ईसाई है फूल जैसा बनना चाहते हैं कांटे के समान नहीं । गुण्डा सिक्ख हो या

ईसाई एक समान हैं। इस लिये हिन्दू-मुसलमान-सिक्ख इत्यादि को एक दूसरे के विरुद्ध ऐसा दोष किसी भी पार्टी पर नहीं लगाना चाहिए धूर्तता (गुण्डागर्दी) जहां भी हो उसे मिल कर दबाना चाहिये। एक हिन्दू धूर्त, मुसलिम धूर्त से उत्तम नहीं, और न ही इसके विपरीत मुसलिम धूर्त हिन्दू धूर्त से उत्तम है। धूर्तता केवल अशान्ति और बेचैनी ही नहीं फैलाती किन्तु देश की प्रत्येक उन्नति के कार्यों के लिए हानिकारक होती है।

आधुनिक समय में सभी कांटा बने हुए हैं। कवि ने ठीक ही वर्णन किया है:—

भला देखो क्या है हमारी यह हालत।
ख़ुद इन्सान को इन्सानियत खा रही है॥
और इन्सानियत भी है ऐसी कि ख़ुद भी।
गुनाह के गड़े में गिरी जा रही है॥
जहाँ थी मुहब्बत की ठण्डी हवायें।
वहां गन्दगी नाच नचवा रही है॥
रहा न है हमदर्द भाई का भाई।
जुदाई की कैंची चली जा रही है॥
मजहब का था मतलब मिलजुल के रहना।
मगर रसम इसकी ही लड़वा रही है॥
मिटा नाम इमानदारी का ऐसा।
कि मक्कारी हर सू नजर आ रही है॥
भुलाया है हमने पुराने सबक को।

नज़र कहरे शेखां की बल खा रही है ॥
भुलाया है ईमान का खौफ़ हमने ।
खुदा की खुदाई मिटी जा रही है ॥
यह इनसान इनसान का दुशमन बना है ।
हमें तो यह कहते शरम आ रही है ॥

— — — —

आधुनिक काल में भारत की ऐसी अवस्था क्यों हो रही है ? …का कारण धार्मिक सम्प्रदायों के ठेकेदार अथवा लीडर हैं । जो …वता (इन्सानियत) से कोसों दूर हैं, जिनका धर्म-ईमान लीडरी का …ावा है । जो सच्चे दिल से काम नहीं करते सदाचार जिनसे कोसों भागता है । इनका काम एक दूसरे कुत्तों की तरह लड़ाना-सिर …वाना-खोपड़ियां उतरवाना, ऐसे निर्दयी परमात्मा के प्यारे कहलाते परन्तु इन्हें परमात्मा का स्वल्पमात्र भी भय नहीं । इन्हें मानवता तनिक भी चिन्ता नहीं । देश की अवस्था पर ज़रा भी ध्यान नहीं । …-ईमान-सदाचार की ओर दृष्टि ही नहीं जाती । इन्हें तो केवल अपनी …डरी की ही चिन्ता है । इनका नाम अखबारों में छपना चाहिये । …का जलूस निकलना चाहिए । इनका आदर सत्कार होना चाहिए । …जी ने सत्य कहा है:—

इधर है कौम ज़ईफ़ ओ मस्कीन ।
उधर है कुछ मुरशदाने खुदबीन ॥
इधर निशान इसका मिट रहा है ।
वह नाम अपने पर मर रहे हैं ॥

अब तो धर्म-ईमान के नाम पर मनुष्य-मनुष्य को खा रहा है । …र एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखता है । यहां तक ही नहीं अपि-

तु एक दूसरे को हानी पहुंचाना अपना कर्म-धर्म समझता है। लिखता है:—

रैन गई और हुआ सबेरा। सूरज ने पूरब को घेरा
मन्दिर को यूं चला पुजारी। नैनों पर थी मस्ती तारी
माथे पर चन्दन का टीका। कण्ठ में माला हाथ में गीत
होठों पर भगवान के नग़मे। उस की प्यारी शान के नग़
रस्ते में जब शेख़ ने देखा। नफ़रत की नज़रों से देखा
नैन मेरे भर आये साजन। ग़म के बादल छाये साजन
धुंधला सा था वक़्त सहर का। जाग रहा था भाग नज़र का
शेख को इक पंडित ने देखा। जब मस्जिद की जानेब जाते
अल्लह हू नग़मा का गाते। अल्लह अकबर कहते जाते
आंख में ऐसी नफ़रत छाई। दिल की कली ऐसी मुरझाई
जैसे मातम हो जाता है। नूर ख़ुशी का खो जाता है
मैने देखा जब यह मन्ज़र। नैन मेरे भर आये साजन
एक ख़ुदा के मानने वाले। उसी प्रभु को जानने वाले
मिलने से घबराते क्यों हैं। आंख से आंख बचाते क्यों
ऐसा भी इक गीत सुनाऊं। अपने धर्म पर कायम रहकर
सब के दिल में प्रीत जगाएं। नैनों में हो प्रेम उजाला
मन की आशाएं खिल ज़ाएं सुख के जीवन को अपनायें

———

देश की अवस्था ऐसी बिगड़ चुकी है कि मनुष्य किस

विश्वास नहीं करता। हर एक सन्मुख बातचीत करने से घबराता है। कोई भी कार्य मनुष्य निश्चिन्त होकर नहीं कर सकता। रिश्ते-नाते टूट रहे हैं। प्रण और वचन का कोई ध्यान नहीं। कवि ने क्या ठीक कहा हैः—

यारों की बेवफ़ाई, अपनों की कज अदाई,
दुनिया से अब तो बाबा, लगने लगा है डर सा॥

जब मनुष्य को धर्म-कर्म से प्यार नहीं और इनका हृदय में स्थान नहीं तो एक ही वस्तु से स्नेह रह जाता है। और वह होती है "माया" जिस प्रकार मलमल जो मुलायम कपड़ा होता है उसे माया लग जाने पर वह कपड़ा अकड़ जाता है ऐसे ही माया का पुजारी मनुष्य अपना धर्म-कर्म तो पुनः नहीं सोचता। जिस का परिणाम यह हैः—

————

न भाईयों में रही उल्फत-न यारों में रही मिल्लत।
जो उल्फत है तो ज़र से है— यही सब से प्यारा है॥

————

मसजिद में है रहीम—और मन्दिरों में राम है।
जपते हैं हिन्दु-मुसलमान-जिसको वो इक नाम है॥
तसबीह और माला —बस इक नाम ही का भेद है।
सच अगर पूछा तो-दोनों का इकसा काम है॥
खुल गया जब भेद इन पर-देखा जब याकताई को।
सारे मज़हब हैं खिलौने खुद खिलाड़ी आप हैं॥

वर्तमान काल के धर्म के पुजारियों को देखो—किस प्रकार धर्म के नाम पर मनुष्य को मनुष्य खा रहा है। एक दूसरे को नष्ट-भ्रष्ट

करने में अपनी भलाई समझते हैं। देखिये, स्त्री-जाती को प्रत्येक धर्म में पूजा के योग्य समझा जाता है। मनु भगवान ने लिखा है कि जहां स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। जहां इनका तिरस्कार अथवा अपमान होता है वहां भूत प्रेत बसते हैं। मुस्लिम शास्त्रों में लिखा है कि स्त्री की ओर यदि अकसमात् एक बार दृष्टि अकस्मात चली जावे तो कोई बात नहीं। दूसरी बार दृष्टि डालना पाप है। इसी प्रकार प्रत्येक सम्प्रदायों वालों ने नारियों को पूजा के योग्य समझा है। परन्तु आज इसके सम्बन्ध में क्या हो रहा है? यदि आज पता लगे, कि एक हिन्दूनारी पर किसी मुसलमान ने हाथ उठाया है तो मुसलमान गदगद प्रसन्न हो उठते हैं। और यदि यह सुनने में आये कि एक मुस्लिम देवी पर किसी हिन्दू ने कुदृष्टि डाली है तो हिन्दू लोग किलकारियां मारते हैं। न केवल ऐसी बातें सुनने पर खुश होते हैं परन्तु एक दूसरे की बहु-बेटियों का तिरस्कार करने के लिये नये २ ढङ्ग सोचते हैं। और फिर डींग मारते हैं कि हमने अपने धर्म की बड़ी सेवा की है।

शिवचन्द की बुद्धि में धर्म के पागलपन का जोश आ जाता है वह एक कुरान शरीफ की जिल्द लेता है उसे अग्नि में जला देता है। ऐसा करने से वह यह समझता है कि मैंने इस्लाम की जड़ को खोखला कर दिया है और हिन्दू-धर्म की नीव को सिमिंट लगा दिया है। इसी तरह "मुहम्मद शफी" सत्यार्थप्रकाश और दूसरे हिन्दू शास्त्रों को दियासलाई दिखाकर विचार करता है कि हिन्दू-धर्म की जड़ को हिला दिया है। और इस्लाम् का झण्डा ऊँचा कर दिया है।

अब्दुल सितार को अपने धर्म की सेवा का जोश है। वह जाकर एक हिन्दू के घर को आग लगा देता है। और यह देखकर कि इस का पुरुषार्थ सफल हो गया, घर जल कर राख हो गया। वह समझता है कि जन्नत (स्वर्ग) में उसके लिये महल तैयार हो गया है। इसी तरह से "बुद्धिडन्द) एक मुसलमान की दुकान को-जो सामान से भरी हुई थी

जला देता है औ मन में प्रसन्न होकर कहता है कि पापी-म्लेच्छ तथा हिन्दू धर्म के शत्रु को हानि पहुँचा कर मैंने स्वर्ग-धाम पा लिया है।

करीम अल्लाह ने कई बार मौलावियों से सुना था कि गाज़ी बनने से एक मुसलमान के लिये स्वर्गद्वार (बहिश्त) अवश्य खुल जाते हैं। कोई उसे रोक नहीं सकता। चाहे इसके अतिरिक्त कोई शुभ कर्म न भी किया हो तब भी हय स्वर्ग प्राप्ति का मार्ग है। वह अपनी कुल्हाड़ी उठाता है और मार्ग पर जाते हुऐ एक बड़ी चोंटी वाले हिन्दू को सदा की नींद सुला देता है। और या अली का जयकारा (नारा) लगाता हुआ छलांगे मारता मारता चला जाता है क्योंकि स्वर्ग का पासपोर्ट हासिल कर लिया है।

दूसरी ओर देवदत्त ने अपने पण्डितों से सुनाथा कि गीता में लीखा है कि शत्रुओं के साथ युद्ध करके उसको मार देना या स्वयं मर जाना स्वर्ग की कुँजी है। अपना छुरा संभालता है और एक लम्बी दाढ़ी तथा माथे पर सहराब (वह दाग जो नित्य प्रति पृथ्वी पर माथा टेकने से पड़ जाता है) वाले मनुष्य को देखा और उसके पेट में छुरा घोंप कर उसकी अंतड़ियां बाहर निकाल देता है। पुनः प्रसन्न हो कर सोचता है कि इन्द्रसिंहासन का अधिकारी बन गया। यद्यपि करीम अल्लाह और देवदत्त अपने वध्य को जानते तक न थे कि वे कैसे मनुष्य हैं। करीम अल्लाह ने केवल चोटी देखकर उसे काफ़र अनुभव किया और देवदत्त नेमहराब पर दृष्टि पड़ते ही-उसे न केवल अपना किन्तु हिन्दु धर्म का शत्रु समझ कर सदा के लिये समाप्त कर दिया।

होली का जलूस जा रहा था। हिन्दू लोग होली खेलते जारहे थे कि एक दम ईंटें बरसने लगीं। एक आदमी मारा गया, कई व्यक्तियों को चोटें आईं। खलबली मच गई। हँसते हुऐ जलूस पर शोक छा गया, निकट ही 'रहीम बक्श' के घर जरदे प्लाओ पक रहा है कई

मित्रों को निमन्त्रण दिया गया पूछा किस लिये ? उत्तर दिया आज बड़ी सफलता हुई है। हिन्दू जलूस पर ईंटें बरसीं हैं और एक हिन्दू मर गया है।

दूसरी ओर मसजिद में नमाज़ के समय से पहले सूर का माँस डाला गया। वे बेचारे मिलकर पानी से मसजिद पुनः २ पवित्र (पाक) कर रहे हैं। वहां से दूर रामलाल के घर कई प्रेमी आपस में खूब हंसरहे हैं और माँस फैंकने वाले की पीठ ठोक रहे हैं। शाबास वीर हों तो ऐसे हों। जब तक ऐसी चालें न चली जाएंगी.हिन्दूधर्म सुरक्षित नही रह सकता।

सरदार केसर सिंह ने अपने मित्रों को पार्टी पर बुलाया। जिसमें सिक्खों के अतिरिक्त मुसलमान भी निमंत्रित किये गये थे। मुसलमान मित्रों ने गोशत खाने से इन्कार किया. तो सरदार साहब ने कहा आप विश्वास रखें। विशेषतया हलाल गोशत (माँस) मंगवाया गया है। अतः मुसलमान उसे माँस को खा गए। खाना समाप्त होने पर केसर सिंह अपने मित्र रणधीर सिंह से अति प्रसन्नता पूर्वक हाथ मिला रहा है और कह रहा है-देखा,झटका का माँस खिला ही तो दिया,क्या हर्ज ? यदि थोड़ा सा झूठ बोल लिया परन्तु उनकी मुसलमानी तो समाप्त हो गई।

दूसरी ओर मिरजा अनवर बेग ने अपनी पदोन्नति के हर्ष में पार्टी दी, पुलाव में माँस डाला गया। ज्ञात है कि सिक्ख तथा हिन्दू मित्र हलाली (विशेषतया काटा हुआ) माँस नहीं खाते। इसलिये पुलाव में से माँस की बोटियां निकाल कर मटर के दाने डाल दिये गये और कहा गया कि यह प्रथक ही तैयार किया गया है। मित्रों के खाना खा-कर चले जाने पर मिरजा साहेब अपनी धर्मपत्नी को बड़े गर्व से कहते हैं कि आज उन लोगो को मैंने मुसलमान बना दिया।

फसलें पकी खड़ी हैं। कटाई का समय निकट है। नहर के एक ओर धर्म सिंह के खेत है दूसरी ओर नूर इलाही के। गण्डा सिंह पटड़ी

पर जाता हुआ नूर इलाही के खेतों की ओर नहर को तोड़ देता है। उसके सारी खेती पानी में डूब कर नष्ट हो जाती है। गण्डासिंह अति प्रसन्न होकर कहता है कि आज उसने एक सिरघिसे टोंडे (मुसलमान) का खेत तबाह करके पन्थ की बड़ी सेवा की है।

ये हैं कुछ देश तथा सम्प्रदाए की सेवायें, जिनपर हमें इतना गर्व है। और जिनको पूर्ण करने के पश्चात् हम स्वर्ग अथवा (बहिश्त) फ्री पास (निःशुल्क प्रवेशपत्र) अपनी जेब ही में समझते हैं। कबि कहता है

भले को हम बुरा समझे, बुरे को हम भला समझे।
पड़े पथ्थर समझ पर अपनी, हम समझे तो क्या समझे॥

जब एक हिन्दू किसी अन्य सम्प्रदाय का अधिकार छीनने में सफल होता है तो बड़ा प्रसन्न होता है। इसी प्रकार जब कोई मुसलमान दूसरे सम्प्रदाय के व्यक्ति का रोजगार छुड़ाने में सफलता प्राप्त कर लेता है। तो वह खुशी से फूला नहीं समाता क्योंकि वे दोनों ऐसे किये हुये कर्म को अपना धर्मिक कर्तव्य समझते हैं। पहले हिन्दू-सिक्ख-मुसलमान-ईसाई एक दूसरे की सेवा सहायता करना अपना कर्तव्य समझते थे। परन्तु अब इसके विपरीत हो रहा है। कुछ दिन हुये मेरे एक सिक्ख प्रेमी की पदउन्नति होने वाली थी परन्तु न हो सकी। इसपर वे बड़े हताश हुऐ। और सरकार तथा अधिकारियों को बुरा-भला कहने लगे-कि आज कल न्याय का सत्यानाश किया जा रहा है। ऐसी बाते पहले कभी न देखी थीं, न सुनी थी। मैंने इन से निवेदन किया कि भाई साहेब, ऐसा वक्त देखा और सुना क्यों नहीं। जिस वक्त आप कहते थे कि जिस के सर पर केस नहीं उसका कोई अधिकार नहीं कि वह आगे बढ़े। क्योंके सैना में हमारे आदमी जाते हैं। खेती-बाड़ी हमारे भाई करते हैं। इसलिये उन्नतिपाना हमारा ही अधिकार है।

मैंने कहा देखी-सुनी तो यह बात बड़ी देर से है। परन्तु उ

समय और के घर लगी थी। अब अपने घर लगी है । आग तो वही है । कहावत है- अपने घर को लगे तो उसे क्रूर अग्नि कहते हैं। और दूसरों के घर में लगे तो बसन्त देवता के नाम से पुकारें । अभी देखो- आगे क्या होता है ।मनुष्य का स्वभाव तो है ही ऐसा। भलाई की ओर रहे तो तभी अच्छा है । परन्तु यदि बुराई की ओर चलदे-तो अन्त सीमा तक ही पहुँच जाता है

इस प्रकार की धार्मिक सेवाओं से हम मनुष्य को शैतान (दानव) बना रहे हैं । इस का परिणाम हर एक व्यक्ति को निःसंकोच स्वयं हीं भुगतना पड़ेगा । प्रत्येक मनुष्य को निःसन्देह परमात्मा का पुत्र मानोगे' तब तो काम ठीक होगा यदि मानवता हाथ से चली गई तो फिर यह जीवन मिलना कठिन होगा

मनुष्य के अन्दर दो शक्तियां काम कर रही हैं। एक दैवी दूसरी आसुरी । जो जाग उठेगी वही शासन करेगी।

अजब हालत है इन्सान की, निराले इसके दफतर हैं।
कि नेकी और बदी का यह, परागन्दा है ईक दफतर ॥

इसी प्रकार से हमको दोनो प्रकार के मनुष्य दिखाई देते हैं।कोई तो ऐसे हैं जो प्रातः उठते ही प्रभु परमात्मा से सब का कल्याण चाहते हैं। सारे संसार का भला चाहते हैं। किसी के प्रति बुरा नहीं सोचते । कोई ऐसा कर्म नहीं करते जिससे दूसरे को कष्ट पहुँचे। स्वयं कष्ठ सहन कर लेते हैं परन्तु किसी दूसरे का दुःख का कारण नहीं बनते। किसी का अधिकार नहीं छीनते । न्याय और सत्य उनका लक्ष्य होता हैं। जिस को भी उनकी सेवा की आवश्यकता पड़े-प्रसन्न चित्तहो कर सेवा करते हैं। प्रणिमात्र में प्रभु की ज्योति देखते हैं।

दूसरे ऐसे व्यक्ति हैं- जो दूसरों को दुःख देना, हानि पहुँचाना अपनी भलाई न होते हुऐ भी दूसरों को कष्ट देना अपनी प्रसन्नता तथा

भलाई समझते हैं। चाहे उनको इससे लाभ हो या नहीं दूसरों की जड़ें अवश्य काटेंगे। उनकी ऐसी मनोवृत्ति बनी रहती है।

यह बात नहीं कि हिन्दुओं में यह बुराई है या मुसलमानों-सिक्खों या ईसाईयों में। वास्तव में हर एक जाति में दोनों प्रकार के मनुष्य होते हैं। तथापि खरबूजे को देखकर खरबूजा अवश्य रंग पकड़ता है। यदि एक पार्टी बुराई करने वाली बनकर दूसरों को हानि पहुँचाएगी, तो यह निश्चय जानो कि बोया हुआ यह बीज, कई गुणा बढ़कर फल लायेगा। और मकड़ी के जाले की भान्ति बुराई करने वालों को लपेट लेगा। और फिर वही बात होगी—

बिल्ली ने शेर पढ़ाया, बिल्ली को ही खाने आया।

पहले बताया गया है कि संसार में दो प्रकार के मनुष्य हैं-एक परोपकारी-जो सत्संग लगाते, धन व्यय करके, अच्छे २ विद्वानों—सन्तमहात्माओं के उपदेश करवाते हैं। ताकि जनता को लाभ हो। साथ ही दूसरी प्रकार के मनुष्य वह होते हैं जो सत्संग से भी जूतियां चुरा करके लाते हैं। कवि लिखता है:—

पढ़ते हैं आदमी ही क़ुरान और नमाज़।
और आदमी ही इनकी चुराते हैं जूतियां॥
चलता है आदमी ही मुसाफिर हो ले के माल।
और आदमी मारे हैं फाँसी गले में डाल॥
याँ आदमी ही लड़ते हैं कहर से घूर-घूर।
और आदमी ही देख इन्हें भागते हैं दूर-दूर॥

इसलिए हमें उचित है कि इस प्रकार की नीच कुसेवाओं को हम देश-सम्प्रदाय अथवा धार्मिक सेवायें न समझें। यह तो धर्म तथा देश के साथ नीच शत्रुता है। सज्जनता, सभ्यता, सुशीलता तथा शिष्टता

की प्रत्येक मनुष्य को हर एक धर्म तथा देश को आवश्यकता है। हम कोई भी ऐसा कर्म न करें जिस से इन सद्गुणों का ह्रास हो, परन्तु हमारे कर्म ऐसे होने चाहिएं-कि इन गुणों की उन्नति हो, तभी हम और हमारी जाति तथा देश उन्नति के शिखर तक पहुँच सकते हैं। वरना वही बात होगी:—

रूलाता है तेरा नज़ारा, ऐ हिन्दोस्तान मुझको।
कि इब्रत खेज़ है तेरा, फसाना सब फसानों में।
न समझोगे तो मिट जाओगे, ऐ हिन्दोस्तां वालो॥
तुम्हारी दासतान तक भी, न होगी दासतानों में॥

पाठक गण। बिगड़ती हुई जातिओं को सुधारना असंभव सा हो जाता है। पुश्त, दरपुश्त (वंश परम्परा) तक बुरे संस्कार स्थिर (कायम) रहते हैं। यहां पहिले ही काफ़ी गिरावट है इसलिये जाति को और नीचा क्यों ले जा रहे हो? परमात्मा के नाम पर सम्भलो। सेहत बिगड़ी हुई ठीक हो सकती है। कारखाने बिगड़े हुऐ ठीक हो सकते हैं, परन्तु बिगड़ी हुई जातियां पुनः सन्मार्ग पर लाना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव हो जाता है। इसी लिये कहा है:—

पानी में है आग लगाना दुश्वार।
बहते दरिया को फेर लाना दुश्वार॥
दुश्वार सही मगर न इतना जितना।
बिगड़ी हुई कौम को बनाना दुश्वार॥

न तौबह से मिलेगा कुछ, न कुछ परहेज़ गारी से।
न कुछ हासिल तुझे होगा, बुत्तों की पास दारी से॥
मुहब्बत खाक के पुतले, मुहब्बत खाकसारी से।

के बक्शे जाऐगें असयां, तेरी खिदमत गुज़ारी से ॥
सुना देना कोई पैग़ाम, हक यह जाके आसी को।
के खिदमत ही मिटाऐगी, तेरे दाग़ें मुआसी को॥

"सन्त संग"

एक मस्ताना ग्राम से जा रहा था। स्थान २ पर रूक जाता था और आश्चर्य रूप में लोगों को देखता था। लोग भी उसकी तरफ हैरान होकर देखते थे। एक स्थान पर उसने देखा, कि लोग हाथों में लाठियां उठाए जा रहे हैं। कोई कहता है- बस, आज का दिन है-इन को दिखावें कि हम भी कुछ हैं। दूसरा कहता कि बड़े दिनों से प्रतीक्षा में थे कि कोई अवसर मिले। एक और कहता है अब अवसर है पिछली कसर निकाल लो। पिछले सारे बदले चुका लो इन को मज़ा चखा दो। ये भी क्या याद रखेंगें-कि किस से वास्ता पड़ा है। आज इन्हें छटी का दूध याद आ जावेगा। और कहता है-आज निर्णय हो जाऐगा कि किस में जान व शक्ति है। इस प्रकार आपस में बातें करते हुए दौड़े जा रहे थे। यह मस्त भी इन लोगों के साथ २ भागा आगे पहुँचकर देखा-जनता का बहुत बड़ा समूह है। एक ओर हिन्दू-दूसरी ओर मुसलमान हैं। एक "अल्ला हू अकबर, और या अली" के नारे लग रहे हैं। दूसरी ओर जय महादेव, जय शक्तिभवानी, जय काली कलकत्ते वाली की ध्वनी आ रही है। यह मस्त हैरान था कि बात क्या है। कई लोगों से पूछने पर कुछ पता न लगा। क्योंकि किसी को होश हो तो बतलाए। वे तो सभी पागल हो रहे थे दाँत पीस रहे थे, लाठियां तान रहे थे। दुर्वचन बोल रहे थे, घुड़कियां दे रहे थे और एक दूसरे पर आक्रमण करने के लिये तैयार थे। जब उस मस्ताने को इस दंगे का कारण प्रतीत न हो सका, तो वह दौड़ कर दोनों दलों के बीच में आकर खड़ा हो गया। और कड़क कर बोला-ऐ नादान भारतियो, सुनो-

फ़ज़ाये हिंद में है आज, क्यों इतना ग़ुबार आया।
कि भाई के कतल को भाई, ही लेकर कटार आया॥
अदावत की खज़ां का, मुलख की गरदन पे वार आया।
बहारों के दिनों में भी, न यहाँ मौसम बहार आया॥
खुदा रा कौमी उल्फत का, दरस पीर ओ जवां सीखे।
कभी यह काश मिलकर बैठना, हिन्दोस्तां सीखे॥

जब ये शब्द गरज कर बोले-तो कुछ मदान्ध व्यक्ति दोनो ओर से बोल उठे-ओ मूर्ख, पीछे हट जा। नहीं तो बीच में पिस जाएगा। अपना जीवन मुफत में न गंवा। तब वह मस्त फिर ऊँचे स्वर से बोला— कि यदि मेरी एक जान का तुम को फिकर है तो इतनी अधिक जानें नष्ट करने को क्यों तुले हो ? सुनो —

कहीं बुगज़ो हसद का, दौर-दौरा जारी है।
तबाही के शरारों की, हर इक जा बारां बारी है॥
यह क्या मज़हब लड़ाता है, नहीं गलति तुम्हारी है।
यह सब कुछ नफस अम्मारा, की ही कमज़ोरी सारी है॥
हर इक भाई का भाईजाँचना दर्दे निहां सीखे।
कभी ऐ काश मिलकर, बैठना हिन्दोस्तां सीखे॥

इतना कह कर वह चुप हो गया। तब दो चार आदमी आगे निकल आये। उनके हृदयपटल पर मस्ताने के शब्दों ने प्रहार किया। वे पूछने लगे-साईं! आप कौन हैं? आपके यहाँ आने का क्या कारण? यहां एक बड़ा भारी दंगा हो चुका है। और अब ये नित्यप्रति के झगड़े बन गए हैं। और हम आज इसका अन्तिम निर्णय करने के लिये पहुँचे है। तुम क्यों मध्य में आ गए हो? तब वह फकीर बोला–

मुहब्बत हर शक्स को, बैठाना मिलकर सिखाती है।
मुहब्बत ही तो बिगड़ी, कौम को फिरासे बनाती है॥
मुहब्बत डूबती नौका को, किनारे पर लगाती है।
मुहब्बत बर्क के जानसोज़, शोलों को बुझाती है॥
मुहब्बत हर बशर हिन्दोस्तान का, बेगुमां सीखे।
कभी ऐ काश मिलकर बैठाना हिन्दोस्तान सीखे॥

अब पांच दस और आदमियों के दिल पर ठोकर लगी तो वे आगे आ गऐ और बोले—महात्मा जी ! आप क्या चाहते हैं ? आपने बातें वास्तव में बड़े काम की और ज्ञानयुक्त की हैं। पर आपका अपना उद्देश्य क्या है ? वह भी तो प्रकट करो। तब वह फकीर दुःखी हो कर ऊँचे स्वर से गाकर कहने लगा—

यही है आरज़ू मेरी, मिटें मज़हब के सब झगड़े।
रहें हम सब वतन में, बाहमी उल्फत से मिल जुल के॥
संवर जायेंगे ये सब आज ही, जो काम हैं बिगड़े।
क्यों न फिर अमन के, आज ही आएं यहां झूंके॥
मज़ा तब शाद है जब यह, बनानी कौम शान सीखे।
कभी ऐकाश मिलकर बैठना हिन्दोस्तान सीखे॥

जब ये शब्द बड़ी दुःखभरी ध्वनि में गाकर कहे-तो उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। दीनो पक्षवालों में से बहुत से लोग फूट-फूट कर रोने लगे। लठियां कन्धों से नीचे उतर गईं। पागलपन उतर गया। होश आ गई। कई लोगों ने आकर मस्ताना के पांव छुऐ और बोले—हमें ऐसी बातें कुछ और सुनाओ। तब वह मस्ताना बोला—

बहार आई वफाओं, का गीत गाने को ।
दिया पयामे मुहब्बत उसने यह ज़माने को ॥
कि आओ हिन्दू-सिक्ख-मुस्लिम शफ़ीक बन जायें ।
लबे हेयात पै गायें इसी तराने को ॥

तब वे लोग कहने लगे-आपकी एक २ बात, आपका एक २ आदेश नहीं २ एक २ शब्द अनमोल रत्न हैं। अपितु अमृत बिन्दू हैं। आपके मुख से तो फूल झड़ रहे हैं। आपकी पवित्र वाणी मोती बिखेर रही है। परन्तु वर्तमान व्यवस्था ने हम को ये सब गीतभुला दिये हैं। प्रेम प्यार का चिह्न नहीं रहा फिर भी आपकी बातें हमको बड़ीं प्रिय लगी हैं जिससे हमारा उन्मत मद ठन्डा हो रहा है। नहीं तो इस समय यहाँ पर रक्त की नदियाँ बह जातीं। हम लोग आपके अति धन्यवादी हैं। परन्तु आपने हमें यह नहीं बताया कि यहां पर एक बड़ा भारी दंगा हुआ है इसका निपटारा कैसे हो ? तब साधु कहने लगा पहले मेरे आने का उद्देश्य सुनो—

कज़ाए दो आलम पे छाना है मुझको ।
कमाले मुहब्बत दिखाना है मुझको ॥
ज़माने को हैरान बनाना है मुझको ।
जो हुआ नहीं कर दिखाना है मुझको ॥
ताअासुब का फितना मिटाना है मुझको ।
आखवत का सिक्का जमाना है मुझको ॥
जहां प्रेम की सब करें मिल के पूजा ।
वो मन्दिर नया इक बनाना है मुझको ॥

रहें जिस में मिलकर सिक्ख-हिन्दू-मुस्लिम।
वो बसती नई इक बसाना है मुझको ॥
जो हर इक को मंज़िल से नज़दीक कर दे।
वो राहे हाकीकत दिखाना है मुझको ॥

तब चारों ओर से लोग उनकी महीमा का गान करने ल कई प्रेमी दौड़ कर साधु के पांव को लिपट गये और कहने लगे, आप सचमुच भगवान ने हमारे कल्याणार्थ भेजा है। परन्तु बात यह है पर आपस के झगड़े बंद हीं नहीं होते, कोई न कोई नई बात हो ज है। महाराज ! जिससे हम एक दूसरे पर पिल पढ़ते हैं। तब वह मस पुनः बोला—

जगह जगह पर खड़ी है सूली।
कदम कदम पर बिछे है फंदे ॥
दुकान खोली है मासियत की।
गुनाह के हो रहें हैं चर्चे ॥
निगाह नापाक रूह मैली।
ज़बान झूटी विचार गन्दे ॥
कुछ ऐसा आया है अब ज़माना।
न वह खुदा है न वह हैं बन्दे ॥
यही है हालत तो दीनो मज़हब।
को दूर ही से सलाम होगा ॥
कहां के हिन्दु कहां के मुस्लिम।
न रहीम होगा न राम होगा ॥

अब एक व्यक्ति उठ कर कहने लगा—महाराज ! आप जो बात कहते हैं एक से एक बढ़कर है। आपको तो हमारे हित और भलाई के लिऐ ही प्रभु ने भेजा है। मेरा विश्वास है। अब आपसे कर जोड़ प्रार्थना है कि कुछ देर यहां पधारें और हमारा निपटारा कर दिजिये। हम सारी अवस्था आपके सम्मुख रख देते हैं। हमारी गर्दन तो आपके उपकार से झुक गई है। और आपकी बातों ने हमारे दुर्व्यसनो को भी धोना आरम्भ कर दिया है। आप कृपा करके यह बताने का कष्ट करें-कि-आप को मन्दिर-मस्जिद में से कौनसा प्यारा और भला मालूम होता है। यह सुनकर वह महात्मा खिलखिलाकर हँस पड़े। और कहा सुनिऐ—

हर जगह उसी का जलवा है काबा और दहर में।
आईने मुख्तलिफ हैं सिकन्दर तो एक है ॥

तब तो लोग आपस में कहने लगे, कितने उच्च बिचार है। देखो, हम कितने दुर्बुद्धि मनुष्य हैं। सत्य वही है जो ये बतला रहें हैं। परन्तु हम लोग यूँही आपस में सरफटोल करते रहते हैं। मनुष्य सचमुच भावना का पुतला है और प्रेम रूप है। पर हां यह ज्ञान हो जाए- कि यह हिन्दु है या मुसलमान, तब अधिक अच्छा होगा। इस पर एक व्यक्ति ने पूछा—महाराज जी ! आपको हिन्दू प्यारे लगते हैं या मुसलमान ? तब तो उस मस्ताना की एक चीख निकल गई। और रोता हुआ कहने लगा—

हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख ईसाई, सब हैं भारतवासी भाई
इन में कोई नहीं है ग़ैर, मूरख काहे राखे बैर॥
तेरा धर्म है सेवा करना, आखिर तो है इक दिन मरना।
चार दिनों की करले सैर, मूरख काहे राखे बैर ॥

यह सुनकर वे लोग एक दूसरे की तरफ झांकने लगे। कुछ

हिन्दू उठ कर मुसलमानों की तरफ आ गए और मुसलमान खड़े होकर हिन्दुओं में आ मिले । फिर आपस में मिल कर बातें करने लगे कि हम बड़ी भूल करते हैं। आखिर यह संसार किसी ने साथ ले कर नहीं जाना । अन्त में तो किया हुआ कर्म ही साथ काम आता है । हिन्दू या मुसलमान ने तो कोई सहायता नहीं करनी, फिर हम आपस में क्यों द्वेष कर रहे हैं । आओ-आपस में बैठ कर निर्णय करें । इतने में एक व्यक्ति कहने लगा—कि यह भगवत प्यारा जिस को भगवान ने हमारे कल्याण और भलाई के लिए भेजा है । यह हमारा पथप्रदर्शक बन सकता है । परन्तु क्या ही अच्छा होता यदि यह बतलादे, कि यह किस सम्प्रदाय से सम्बन्धित है । फिर एक दूसरे ने कहा—हमें इस बात की क्या ज़रूरत है । लाभ उठा लेना चाहिए । फिर पहले आदमी ने कहा—यह तो ठीक है । फिर भी इस बात चीत करने में बड़ा रस आता है। यदि हमको यह ज्ञान हो जाता-कि यह भी इस्लाम को मानने वाला या हिन्दू धर्म को मानने वाला है । तब वे महात्मा जी से कहने लगे—स्वामी जी ! वर्तमान अवस्था सदा से ऐसी चली आई है या पहले कुछ अवस्था और थी। हमारा यह संशय दूर कर दीजिए । हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसी अवस्था सृष्टि रचना से ही चली आती है। और इसी प्रकार संसार के लोग समय गुज़ारते चले आए हैं । दूसरी बात यह मतमतान्तर (फिरके) हैं आप किन को अपनी दृष्टि में उत्तम-प्यारा देखते हैं । यह सुनकर स्वामी जी मुस्कराये, फिर भूमि पर बैठ गए-और बड़े मीठे स्वर से गाकर यों कहा-पहली बात का उत्तर-

हिन्दू का मुस्लिम भाई है, यह और नहीं मैं और नहीं ॥
यहां प्रेम का जाम छलकता था, यहां प्रेम की गंगा बहती थी।
यहां प्रेम का राज था भारत में, यहां प्रेम की देवी रहती थी।
जब प्रेम का मेघ बरसता था । तब प्रम की देवी कहती थी ।

सब हिन्दी भाई-भाई हैं, सब भारत के शैदाई हैं।
जब शेख ब्राह्मण भाई थे, और दोनों में थी प्रीत यहां।
जब गिरना गोया उठना था, और हार थी उनकी जीत यहां।
सब हिन्दी भाई-भाई हैं, सब भारत के शैदाई हैं।
जब पण्डित पूजा करता था, और शेख -इबादत करता था।
जब प्रेम का सागर बहता था, हर एक सितम से डरता था।
तब हिन्द का हर ज़र्रा-ज़र्रा, सरगोशी, हरदम करता था।
सब हिन्दी भाई हैं, सब भारत के शैदाई हैं॥

अब सुनिए दूसरी बात का उत्तरऽ

हम हिन्दू हों या मुस्लिम हों, भारत के यकसां प्यारे हैं
ईसाई हों या खालसा जी, भारत की आंख के तारे हैं॥
भारत की गोद में जो हैं पल्ले, वह भारत के मेह पारे हैं।
भारत माता के लखते जिगर, हम भारत वासी सारे हैं॥
हम सब के मिलकर रहने से, भारत के वारे न्यारे हैं।
हम हिन्दु हों या मुस्लिम हों, भारत के यकसां प्यारे हैं॥

अब दोनों पक्षों में प्रेम की लहर दौड़ गई। जहां पहले लठियां ले कर एक दूसरे का सिर फोड़ने के लिए आये थे। अब सब मिल जुल कर महात्मा जी के गिर्द घेरा डाल कर बैठ गये। एक व्यक्ति ने प्रार्थना की, कि अब आप भविष्य के लिए हमारा मार्ग शुद्ध कर दीजिए ताकि हम इस प्रकार आपस में द्वेष न करें। तब महात्मा जी ने पूछा—अच्छा बताईये, आप के झगड़े का मूल कारण क्या था। तब वही व्यक्ति कहने लगा—कि आज एक मुसलमान एक अनजान हिन्दू बालक को उठाकर ले

जा रहा था । सूचना मिलने पर हमने शहर में घण्टा बजवा दिया । फिर दोनोंओर से लाठियां लेकर हम यहां पहुँच गये । तब महात्माजी ने पूछा कि बालक को उठाने वाला व्यक्ति है कहां ? और वह बालक है कहां ? इस पर सभी एक दूसरे को देखने लगे, परन्तु कोई पता न चला, अन्त में खोज करने पर ज्ञात हुआ कि किसी स्वार्थी धूर्त ने अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए यह झूठी खबर फैला दी । तब वे सभी लोग आश्चर्य चकित हो गये । और एक दूसरे का मुंह देखने लगे । इस पर संत महात्मा ने कहा कि यह है आप लोगों की बुद्धि । तुम्हें यदि कोई यह कह दे कि तुम्हारा कान कुत्ता ले गया, तो क्या तुम कान को हाथ लगा कर न देखोगे, कुत्ते के पींछे भागोगे । यह बात सुन कर सभी लोग अत्यन्त लज्जित हो गए ।

महात्मा ने कहा–जिस मार्ग का नाम धर्म है । अर्थात जिस पर चलकर मनुष्य का जीवन बन सकता है । और वह स्वयं लोक परलोक का कल्याण तथा विचार कर सकता है । वह यह है कि अपना जीवन नेक बनाओ । संकट विपत्ति के आ जाने पर मत घबराओ । धैर्यवान बनो । किसी व्यक्ति से यदि आप को कष्ट पहूँचे उसे उदारता से सहन करो । परन्तु स्वयं किसी के लिए दुःख कष्ट का कारण न बनो । हृदय की उदारता से विशाल दृष्टि वाले बनो । प्राणि मात्र से प्यार करो एकता तथा प्रेम प्रीति से परस्पर व्यवहार करो । प्राणिमात्र को परमात्मा। का परिवार समझो । उसकी दृष्टि में हम सब एक जैसे हैं यह स्मरण रखो ।

इतना कह कर महात्मा ने चारों ओर देखा और कहने लगे– मैंने जो टूटे फूटे, विचार आपके सम्मुख रखे हैं । इन पर आप अच्छी प्रकार विचार कर ध्यान में रखें और नित्य प्रति हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैनी इत्यादि सभी को मिल कर इन बातों पर प्रेम पूर्वक विचार करते रहना चाहिएं । जैसे कवि ने कहा है–

रहें प्रेम से मिल के आपस में सारे ।
इसीमें है बेशक भलाई हमारी ॥
जहालत को मिलकर निकालें वतन से ।
हो पंजे से जिस के हमारी रिहाई ॥
लिखाई पढ़ाई के काबिल हों सारे ।
कि है इल्म से ही बड़ाई हमारी ॥
बड़ी मेहनतों से कमाया है जिसको ।
लगे नेकियों में कमाई हमारी ॥
यह ग़ुरबत की हालत यह ज़िल्लत सूरत ।
ख़ुदा ने न यूँ थी बनाई हमारी ॥
वतन भी वही है वही हिन्द वाले ।
कि कायल थी कल तक ख़ुदाई हमारी ॥
मगर इस फसाद और जहालत के कारण ।
ज़माने ने देखी बुराई हमारी ॥
उन ऊँचे मकामों पै पहुँची हैं कौमें ।
नहीं है जहां तक रसाई हमारी ॥
गर मिल कर कोशिश करें हम भी सारे ।
करे अकल गर रहनुमाई हमारी ॥
तो ग़ुरबत के फंदे से मुश्किल नहीं है ।
बचाओ हमारा रिहाई हमारी ॥
जो की हम ने हिम्मत तो फिर देख लेना ।
ख़ुदा भी हमारा ख़ुदाई हमारी ॥

ओ३म शम् ॥

ओ३म्

तीसरा उपदेश

समय की कदर करो।

ओ3म वायुरनिलम मृतम थेदं भस्मान्त ँ शरीरम ओ३म कृतो समर ॥
य० अ० ४० मं० १५ ॥

अर्थात—शरीर में आने जाने वाला जीव अमर है, परन्तु यह शरीर केवल भस्म पर्यन्त है। इस लिए हे जीव ! अन्त समय ओ३म् का स्मरण कर।

जो कल करना है आज करले-जो आज करना है अब करले ।
जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया-फिर पछताए क्या होवत है ॥

हम प्रायः लोगों से यह कहते सुना करते हैं कि अभी काफी समय तथा आयु पड़ी है पहले अन्य कार्य कर लें फिर परमात्मा को भी याद कर लेंगे। कहावत है:—

"सामान सौ वरस का—कल की खबर नहीं ॥"

एक महात्मा का एक योग्य शिष्य था और वह प्रत्येक बात को पूरी श्रद्धा से सीखता तथा मनन करता था। गुरु के इस उपदेश से उसे इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया था कि मनुष्य जीवन का प्रत्येक क्षण अन्तिम क्षण हो सकता है। अतः वह प्रत्येक क्षण अपने आप को जागृत रखता था। उस ने यह भी सुन रखा था कि ममुष्य के जिस प्रकार के विचार मरणकाल के समय होते हैं। उसी प्रकार की उसे गति मिलती है। परन्तु कौन जानता है कि अन्त समय कौनसा होगा। अतः यजुर्वेद के ऊपर दिये हुए मन्त्र का प्रत्येक क्षण मनन करता है।

इस शिष्य का ऐसा ही निश्चय था और उस पर पूरे तौर पर

आचरण करता था । एक दिन कोई कार्य करते २ गुरु देव ने कह दिया कि अच्छा शेष कार्य कल कर लेंगे । शिष्य गुरु की यह बात सुनते ही उठ कर नाचने और कलकारियां मारने लगा । गुरु यह दृष्य देख कर विचार करने लगा कि यह क्या बात है । इसे क्या हो गया । कारण पूछने पर शिष्य ने कहा, कि महाराज ! मैं बड़ा भाग्यशाली हूं, कि मेरा गुरुदेव अन्तर्यामी है । क्योंकि आप को ज्ञान हो गया है । कि कल तक हम जीवित रहेंगे । वरना आप ने स्वयं बतलाया था ।

सांस सांस हर समरिए, वृथा सांस न खोए ।
क्या जानूं कोई अन्त का, यही सांस न होए ॥

गुरु पर शिष्य के उत्तर ने बड़ा प्रभाव डाला और उसकी आंखों से आंसू टपक पड़े और कहने लगा : बेटा ! तू अच्छा है । लो इस कार्य को अभी समाप्त कर दें । कल तो भगवान के हाथ में है ।

हम में कितने हैं जो आत्मकल्याण के कार्य को भविष्य के लिये नहीं छोढ़ते । कोई कहता है पच्चास वर्ष तक तो शास्त्रों–वेदों ने गृहस्थ भोगने की स्वीकृति दी है । तत पश्चात आत्म चिन्तन हो सकता है कोई कहता है पचपन वर्ष की आयु में जब पैनशन हो जावेगीं । तब तक निश्चिन्त हो कर इस धुन में लगेगें । कोई कहता है बेटे दुकान का कार्य व्यवहार संभाल लेंगे, तब निश्चिन्त होकर ध्यान समाधि में बैठा करेंगे । वह कितनी भूल है । कवि लिखता है ।

जागना है जाग ले-इफलाक के साया तले ।
हशर तक सोता रहेगा-खाक के साया तले ॥

किसी प्रेमी मित्र से कहें चलो सत्संग में चलें तो प्रायः यह उत्तर मिलता है अब नहीं, फिर कभी, फिर कभी कहने वाले ने यह विचार नहीं किया कि इन शब्दों के कहने वालों ने अति सुन्दर अवसर हाथ से खो दिये फिर कभी कहते २ आयु समाप्त कर दी और अन्त

में आंसू बहाते २ इस संसार से चले गये। न मूड़ी मिली न राम।

यह पुस्तक (ब्रह्म पथ प्रसाद) चूंकि अधिकतर अध्यात्मिक क्षेत्र से सम्बन्ध रखती है। अतः इसमें उसकी ओर ही संकेत है। हमें इस बात पर विशेष रूप में ध्यान देना चाहिये कि अब नहीं फिर कभी सही- कहना बड़ी भयानक भूल है। अध्यात्मिक उन्नति के लिये तो यह धारा १४४ के तुल्य है। हमें अपने सन्मुख यह भाव रखना चाहिये कि अब नहीं, तो कभी नहीं। प्रायः मनुष्य के स्वभाव में कई प्रकार की त्रुटियां होती हैं! परन्तु मैं समझता हुँ। सबसे बड़ा दोष तथा दुगुणा समय को टालने का है। अध्यात्मिक उन्नति के लिये तो यह दोष 'तो अति हानिकारक है। इससे मुक्ति प्राप्त किये विना सफलता प्राप्त करना संभव नहीं—संसार तीन अवस्थाओं में बांटा गया है। भूत—वर्तमान—भविष्यत। परन्तु हम केवल वर्तमान से लाभ उठा सकते हैं। भूत वह जो गुजर गया और फिर वापिस आना नहीं, भविष्यत के सम्बन्ध में हमें ज्ञात नहीं कि कैसा होगा? हमने अपने जीवन में क्या कुछ देखना है इसपर आशा रखना भूल है। वर्तमान ही हमारे काम की वस्तु है अतः इस से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिये जो भाई यह कह देते हैं। अभी तो नहीं फिर कभी देख लेंगे। क्या करें समय ही नहीं मिलता, फिर समय मिलने पर कर लेवेंगे वह अति भूल करते हैं और अपनी उन्नति का द्वार बन्द करते हैं। यह तो उसी प्रकार की बात है कि एक मनुष्य नदी के किनारे पानी पीने के लिये बैठा, परन्तु जो पानी चला गया है उसके सम्बन्ध में तो पश्चाताप करने लगा और जो आने वाला है उसकी प्रतीक्षा करने लगे परन्तु सामने वाले पानी से अपनी प्यास न बुझाए।

एक व्यक्ति खड़ा कह रहा था। हा शोक! यदि यह बात हम

को दस वर्ष पूर्व प्रतीत होती तो आज हमारी अवस्था यह न होती, इस सम्बन्ध में बार २ कहते और शोक करते २ दो घण्टे खो दिये । एक बुद्धिमान ने उसे कहा कि अब यूं कहो कि यदि दस वर्ष तथा दो घंटे पूर्व इससे ज्ञात कर पाता, इत्यादि कल कोयूं कह देना, कि यदि दस वर्ष एक दिन पहले ही पता लग जाता इत्यादी, भला यह भी कोई बात है। ननु नच(अगर-मगर) करने से क्या लाभ है इस प्रकार से तो हम यूं कह सकते हैं कि यदि हमारे दादा-पड़दादा इत्यादि मृत्यू का ग्रास न बन जाते, तो आज ही हम अपना एक नगर बसा लेते। जो हो गया सो हो गया ईस से ज्ञान प्राप्त कर सकते हो। परन्तु शोक प्रगट करना व्यर्थ है।

भोले भाई! जो समय बीत गया उसकी चिन्ता मत करो। वर्तमान क्षण, पल, घड़ी को क्यों व्यर्थ गंवा रहे हो। अब ऐसे बल और शक्ति से काम करो, जो कि पिछली कमी को पूरा कर दो। आत्मिक उन्नति के सम्बन्ध में यह ठीक है कि जो प्रारम्भिक आयु में ही अपने को इस में लगा देते हो वह बड़े भाग्यशाली होते हैं। वह ऊँचे अधिकार को प्राप्त कर लेते हैं।

भजन

पल पल करके ऐ बन्दे, तेरी आयु घटती जावे।
करना हो धर्म जो कर ले, नहीं ऐ पीछे पछतावे। पल पल...
हरिश्चन्द्र धर्म की खातिर, बिका भंगी के घर जाकर।
सब राज व रानी पुत्र, सत्य धर्म नहीं बिकवाए ॥ पल पल..
प्रहलाद भगत ध्रुव पूर्ण, ने किया धर्म का सेवन।
श्रवण ने धर्म के कारण, हैं अपने प्राण गंवाए ॥ पल पल...
मूर्ध्वज ने धर्म कमाया, आरे से सुत चिरवाया।

सरखंजर से कटवाया, उस बाल हकीकत राय ।। पल पल···

सीता जी राम और लछमण, रहे चौदह वरस तक ही वन।
की धर्म की आज्ञा पालन, दुखों से नहीं घबराये ।। पल पल··

गुरू गोविन्द सिंह ने प्यारे, आखों के अपने तारे।
दोनो ही धर्म पै वारे, दीवारों में चुनवाए।। पल पल ·····

गुरू अर्जुन तेग़ बहादुर, ने धर्म की रक्षा खातिर।
बलिदान किये अपने सर, वे पदवी अमर की पाऐ ।। पल पल'

बन्दा वह वीर बैरागी, जिस की थी समाद्धि लागी।
देह उसने धर्म पै त्यागी; अंग अंग सारे कटवाये ।। पल···

सेवा जी धर्म नहारेः कहाँ हैं वह प्रताप प्यारे।
सुख त्यागे जिसने सारे, जंगल की पत्तियां खाए ।। पल···

इस धर्म की खातिर भाई; छुरी लेख राम ने खाई।
श्रद्धा नन्द ने भेंट चढ़ाई, छाती पै गोलियां खाऐ ।। पल···

दयानन्द ने धर्म को पाला, वेदों का दीपक जाला।
पिया अन्त ज़हर दा प्याला, कातिल को भी हैं छड़वाए।। पल··

चन्दन को रगड़ो जितना, वह महकेगा ही उतना।
तप तप करके ही सोना, वह विपन कुन्दन बन जाए ।। पल···

एक मनुष्य अपनी आत्मिक उन्नति केलि ये कुछ नहीं करता रहा। प्रतः उठता भी न बजे हो। दैव योग से उसे अच्छा सत्संग मिल गया और उसे विचार आया कि कल से प्रतः उठना आरम्भ कर देंगे और आत्म चिन्तत करें गे। दूसरे दिन प्रातः जाग खुली तो कह दिया, अच्छा आज तो नींद का कुछ आनन्द ले लें कल सही।

इस मनुष्य की भी कल कभी नहीं आवेगी। याद रखिये, जो आज आरम्भ नहीं करता, वह कल भी आरम्भ नहीं कर सकता. जो कल नहीं कर सकता, वह परसों भी नहीं कर सकता, उस की आयु आज कल करते ही बीत जावेगी। फिर शोक प्रगट करने से कुछ हाथ न आवेगा।"

कई दुकानदारों ने बोर्ड पर लिख कर लगाया हुआ होता है "नकद आज उधार कल" वह तोयह शब्द गाहकों के जितलाने अर्थ, कि जो नकद दाम लाये हों वो अपनी इच्छा की वस्तु आज ले सकता है और जो उधार मांगे वह कल आये। कल आकर उधार लेने का तात्पर्य यह है कि वह कभी न ले सकेगा। क्यों कि कल तो कभी आती ही नहीं अतः अपनी आत्मिक उन्नति में ज़रा भी देर न लगाकर इसी क्षण में ही लग जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में एक कहानी है:—

एक जूता बनाने वाले ने किसी को जूता बनाकर देने का कल का समय बतलाया। वह दूसरे दिन गया तो जूते वाले ने कहा 'कल' इसी प्रकार कई दिन यही उत्तर देता रहा। वह बड़ा चकित हुआ। एक दिन फिर जब वह गया तो मोची उपस्थित न था। उसका पुत्र बैठा था उससे पूछने पर उत्तर मिला 'सुनो जी'। कल का वायदा तो गलत है हम एक कीकर का वृक्ष लगाएंगे। वह जब बड़ा होगा उसकी छाल उतारेंगे उस से चमड़ा रंगेंगे इस चमड़े से आपका जूता बनाएंगे वह बेचारा निरूत्तर हो कर चला गया। जब मोची घर पहुँचा तो पुत्र ने बड़े गौरव से कहा, कि मैंने एक गाहक को इतना लम्बा वायदा किया है कि उसका बरसों तक हमें कोई तकाज़ा न होगा। बाप ने उत्तर सुन कर पुत्र को डांटा, और कहा मन्द बुद्धि। तूने बुरा किया वह समय तो फिर भी आही जावेगा, परन्तु कल तो कभी आ ही नहीं सकता। अतः कल तक काम को टालने का अर्थ यह है कि हम इस काम को करना ही नहीं चाहते।

आत्मिक उन्नति के काम का तो कल तक टालना ही बुरा है। फिर वह लोग कितनी भूल करते हैं जो बुढ़ापे में इसी ओर अग्रसर होने की आशा रखते हैं। पहले तो हमें ज्ञान ही नहीं, के हमारा बुढ़ापा आना भीहै या नहीं। सम्भव है हम वृद्ध होने से पूर्व ही इस संसार से चल बसेंगे। दूसरा जिस कार्य का अभ्यास युवास्था में नहीं किया वह बुढ़ापे में कभी हो ही नहीं सकता। तीसरा बुढ़ापे में शरीर निर्बल इद्रीयां शिथिल अंग ढीले पड़ जाते हैं। हृदय मस्तिष्क दुर्बल होने लगता हैं। बुद्धि भी काम नहीं करती तथा विचार शक्ति मन्द हो जाती है।

अतः उत्तम समय आत्मिक उन्नती का आज ही है। नहीं २ यही पल और इसी क्षण ही है। जो आज काम करना नहीं चाहते वह कल पर छोड़ते हैं। वह यह नहीं समझते कि कल तो हमारे पास आज बन कर ही आवेगा। जिन मनुष्यों ने इस जीवन के उद्देश्य को जान लिया है। जीवन रहस्य को समझ लिया है वह भूत समय का शोक नहीं करते। वह अपना काम तत्काल आरम्भ कर देते हैं। क्यों कि वे जानते हैं कि जो प्रस्तुत मिनिट है वो अगले मिनिट में भूत बन जावेगा और उसको वापिस लाने की स्वयं प्रभू का भी शक्ति और सामर्थ नही मनुष्य का तो कहना ही क्या है।

अतः प्यारे ! वर्तमान काल में जाग, उठ। हाथ हिला, आचरण कर, न तूं बीते समय को रो, और न भावी की इच्छा से नाच। तेरे हाथ में वर्तमान ही है इस से लाभ उठा, फिर दिख तेरे सारे मनोरथ सिद्ध होंगे। और तेरा जीवन सफल हो जवेगा। जिस किसी ने उन्नित की है अथवा जो कोई आगे बढ़ा है,जिस किसी ने इस संसार में नाम पाया है या जिसने अपना परलोक सुधारा है। इस वर्तमानकाल से ही लाभ उठाया है। यह नियम लाखों वर्ष पूर्व भी था आज भी है। अतः वर्तमान कालमें लाभ उठाते हुऐ लोक-परलोक दोनों में उन्नतिकरो।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब
काल काल के हाथ है, बहुरी करेगा कब ॥

कुछ जूआरी सागर के तट पर जूआ खेल रहे थे। एक व्योपारी
वहां से गुजारा तो क्या देखा। एक मनुष्य सागर में गोता लगाकर
झोली भर लाता है। जुआरी वह झोली वीस रू० देकर ले लेते हैं।
अब व्योपारी ने गोता खोर से कहा। मेरे लिये भी सागर में गोता लगा
कर झोली भर लाओ। मैं भी २० रू० झोली के देकर ले लूगा। गोता
खोर ने गोता लगाया, झोली भर लाया वह व्योपारी को देकर २० रु०
ले लिए तो झोली को खोला, देखा, इसमें पत्थर और कौडियां हैं। फिर
व्योपारी ने गोताखोर से कहा और गोता लगाओ, गोता खोर ने गोता
लगाकर झोली भर कर दी और २० रू० ले लिये। उसे व्योपारी ने
देखा फिर कौड़ीयां निकली, अब व्योपारी के पास शेष १९ रू० थे।
गोता खोर से कहा कि अब मेरे पास केवल १९ रू० हैं यदि स्वीकार
हों तो एक गोता और लगाकर झोली भर लाओ। एक रू० फिर
कभी आकर दे दूंगा। अब गोता खोर ने गोता लगाया। झोली
भर के दी। १९ रू० ले लिये। अब व्योपारी ने खोला देखा कौड़ीयां
के साथ एक गोल पत्थर निकला अब पल्ले कोई दाम ही नहीं रहा,
वह पत्थर का गोला ले कर एक दुकानदार के पास गया। गोला दिखा
कर कहा मुझे चार पैसे दे दो मैं रोटी खा लूंगा। उस ने कहा निकमा
पत्थर है मैं क्या करूंगा। दूसरे दुकान दार ने दूर से देखा उस ने
बुला कर कहा पांच रू० में दूंगा। पत्थर मुझे दे दो। अब व्योपारी
ने समझा यह पत्थर कोई मूल्यवान वस्तु है पुनः जौहरी ने देखा उस ने
कहा एक लाख रू० दूंगा। प्रन्तु व्योपारी ने देने से इन्कार कर दिया
अन्त में राजा तक सूचना हुई। राजा ने बुलाया पत्थर देखा।
व्योपारी से कहा "देखो! मेरे हीरे-सोने-रुपये के कमरों में चले जाओ

जो वह भरे हुऐ हैं एक घंटे में जिस कदर उठा सकते हो उठा लो यह पत्थर मुझ को दे दो। अब राजा ने मन्त्री को साथ लिया पहले हीरों का कमरा देखा और विचार किया कि यदि चार मजदूर और दो गाड़ीयां उठावने को लगा दूँ तो यह कमरा खाली हो जावेगा। फिर दूसरे कमरे में गया, देखा, सोने की अशरफियों से भरा पड़ा है तो सोचा आठ आदमी और चार गाड़ियाँ इस के उठाने को लगा दूं। तो यह कमरा खाली हो जावेगा। फिर रूपयों के कमरे में गया तो सोचा कि यदि सोलह आदमी आठ गाड़ीयां लगा दूं तो कमरा यह भी खाली हो जावेगा। इसी प्रकार से सोचते २ उनासठ मिनिट बीत गये। अब मन्त्री ने कहा केवल एक मिन्ट आपका शेष है जो उठाना हो उठालो। अब जलदी से दो मुठी रूपयों की भर लीं बाहर निकला तो उन्हें गिना गया तो उनासट रू० निकले जो खरच किये थे। अब व्योपारी हाय २ करता हुआ जा रहा है। मेरे हीरे के कमरे, मेरे सोने के, और अशरफियों के कमरे। रूपयों के कमरे, मेरे हाथों ही चले गये पर मैं यूंही प्रोग्राम बनाता रहा। पल ही काल बन गया। फिर

पच्छताए होवत क्या है जब चिड़ीयां चुग गईं खेत।

गया वकत फिर हाथ आता नहीं।
सदा ऐश दौरां दिखाता नहीं॥

इन्सान खो के वक़्त को पाता नहीं कभी।
जो दम गुज़र गया, वह आता नहीं कभी॥

वक़्त पर क़तरा है काफी, अबरे खुश हंगाम का।
जल गिया जब खेत, मिंह बरसा तो फिर किस काम का॥

आज कहे मैं कल भजूंगा। कल कहे मैं काल।
आज काल में करत ही, अवसर जासी चाल॥

भजन

दुनियां यह कर्म क्षेत्र है, कोई सैर गाह नहीं।
जब तक हैं सांस तन में, प्रभु को भुला नहीं॥
खुश किस्मती से है मिला, चोला मनुष्य का यह।
जीती हुई बाज़ी है यह, इस को हरा नहीं॥
चौसर बिछी है काम, क्रोध, लोभ मोह की।
खेली अगर यह खेल, फिर तो बस फंसा नहीं॥
मत मस्त हो विषयों का मय, पी करके रात दिन।
ऐ बेखबर दम के तेरे, कुछ भी पता नहीं।
धन माल जिस पै इस कदर, भूला हुआ है तू।
यह तो किसी के आज तक, हमरा गया नहीं॥
तृष्णा न यह मिटेगी, न भोग होंगे कम।
लेकिन तू ही मिट जावेगा, क्यों समझता नहीं॥
करना हो धर्म जो विषन, वह करले आज ही।
कल का तो कुछ पता नहीं, होगा किया नहीं॥

ऐ भूत—वर्तमान—भविष्य तीनों कालों के स्वामी मैं कितनी भूल में रहा। समझता था की क्याजल्दी पडी है पहले इस संसार का धन माल संग्रह कर लें फिर भविष्य का भी विचार कर लेंगे। इस संसार के लोभ—मोह ने मुझे कहीं का ना रक्खा जब इस संसार के धन,माल को संग्रह कर लिय तो उसके फंदे में ऐसा फंसा कि भविष्य की तैयारी के लिऐ आजकल करनेलगा। विचार आता था बस आज यह संसारिक कार्य कर लूँ। फिर स्वतन्त्रता हो जावेगी,परन्तु इस से अगले दिवस

और कोइ आवश्यक कार्य निकल आता था। फिर मैं दूसरे कल का आ
शावादी हो जाता था। समय तो स्थिर नहीं रहता। यूं तो संसार
कोई वस्तु भी स्थिर नहीं। परन्तु समय तो भागा ही जा रहा है। मैं आ
वाले समय पर भरोसा करता रहा वर्त्तमान से लाभ न उठाया।

प्रभु ने हमें अमृत दिया, समय है जिसका नाम।
वे नर नारी धन्य हैं; इस से लेन जो काम॥

प्रभु मैं ने देखा, मेरा पड़ोसी जो मुझ से आयु में कम था औ
धन माल में मुझ से बड़ा हुआ था। अकस्मात् इस संसार से च
गया। जिस धन-माल के लिये वह रात-दिन एक करके लगा रहा
वह सब का सब यहां पड़ा रहा। उस की मृत्यू ने मेरी आँखें खोल दे
भगवान! मैं अब समझ गया हूं कि इस कल पर विश्वास करना मूर
खता है। मैं ने अब कल वाली रट लगानी बन्द कर दी है। आज
ही अपनी आत्मिक उन्नति आरम्भ कर दी है। मेरे अब संसार के का
भी चल रहे हैं। परन्तु अब मैं उन में आसक्त नहीं हूँ। मैं देखता हूँ ज
अब मेरी आत्मा उन्नति कर रही है साथ ही मेरे संसारिक कार्य भ
वैसे चल रहे हैं।

प्रभु! अब मेरे होश ठिकाने आ गऐ हैं अब आप की कृपा बन
रहनीं चाहिये। अब मैं आत्मिक उन्नति के सुख पर पहुँच जाऊँगा

यारो सफ़र का कुछ सरो सामान तो कर—
जाता कहां है तम को ज़रा याद तो कर।
ख्याल ज़ादे सफ़र रख, अदम को जाना हो-
जो ले न जाऐ गा यां से, तो पाये गा फिर क्या।
छांनते हो खाक क्यों, दुनियां के कामों के लिये।
मिट रहे हो रात दिन, क्यों, झूटे नामों के लिये॥

कुछ वहां के भी लिये, या सब कुछ यहीं के वास्ते ।
दामे दुनियां में फंसे हो, खोटे दामों के लिये ॥

दिन को फिर 2 के रोज़े शाम किया ।
काम का पर न कोई, काम किया ॥
हैफ दो रोज़ा ज़िन्दगी के लिये ।
हम ने क्या क्या न ऐहत्माम किया ॥

अफ़सोस जवानी की, न कुछ गौर हुई ।
होनी थी जो कैफीयत, बहरे तौर हुई ॥
दांतों ने किया कसदु, जुदा होने का ।
आखों की भी अब हम, से नज़र दूर हुई ॥
मालो ज़र यूंही पड़ा, रह जाऐगा दहर में ।
काम आयेगा वही, रखा है जो ज़ादे सफ़र ॥
एक दिन ही खाक में मिलना, यह सब कुछ खाक है ।
दौलते दुनियां पै नाजां, क्यों ऐ इन्सां इस कदर ॥
क्या कम दुनिया से, साहिबे माल गऐ ।
दौलत न गई साथ, न इत्फाल गऐ ॥
पहूंचा के लिहद तक, फिर आये सब लोग ।
हमरा अगर गऐ, तो आमाल गए ॥

वृद्ध भयो सूझे नहीं, काल जो पहुँचो आन।
कहे नानक आँधरे, क्यों न भजो भगवान।

——

भजन

उठ जाग मुसाफिर भोर-भई-अब रैन कहां जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है-जो सोवत है सो खोवत है।
उठ नींद से अखियां खोल ज़रा—कुछ अपने प्रभु वल ध्यान लगा।
यह प्रीत करन की रीत नहीं-प्रभु जागत है तू सोवत है।
नादान भुगत करनी अपनी-ऐ पापी पाप में चैन कहां।
जब पाप की गठड़ी शीश धरी-फिर शीश पकड़ क्यों रोवत है।

——

सुन्दर पंछी वृक्ष पर लियो बसेरा आन।
रात रहे दिन उठ गये- त्यूं कुटम्ब सब जान।

ओ३म् शम्

चौथा उपदेश

"सध्यात्सिम्त"

ओइम् ऋतयन्ति क्षितयो योग उग्राशुषाणा सो मिथो अर्ण सातौ
संयद्विशो ववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्र यन्ते अभी के ॥

ऋ० मं० ४ सू० २४ मं ४

भावर्थः-योगाभ्यास के बिना बुद्धि नहीं बढ़ती है और बुद्धि के बिना धन तथा आत्मा की सिद्धि नहीं होती, तथा विद्या पुरुषार्थ और न्याय के बिना प्रजा का पालन नहीं कर सकते हैं। ४ ॥

जो सज्जन आत्मपथ के अभिलाषी हैं जिनको प्रभु से प्रेम करने की इच्छा है जिनको प्रभु प्राप्ति की भावना रहती है जो अध्यात्मिक रूप में ऊँचा उठना चाहते हैं उनका साधन है योग। योग के अर्थ हैं मिलाना जोड़ना, (किसी को मिलना या जोड़ना) आत्मा को परमात्मा से मिलाने जोड़ने का नाम योग है। श्री विनोबा जी गीता प्रवचन पुस्तक में योग का रास्ता जीवन के सिद्धान्तो को व्यवहार में लाने की जो कला या युक्ति है उसको योग कहते हैं।

योगियां साध ली जीवन कला।

योग सीखने या योग धारणे की भावना बहुत व्यक्तियों को उठती है और कई स्थानों पर योग आश्रम का खुलला बताया जाता है कि योग के अभिलाषी इस लाभ कारी विद्या को प्राप्त करना चाहते हैं परन्तु उन्हें प्रायः सफलता नहीं होती। कुछ समय वो व्यक्ति आसन तथा अन्य सम्बन्धित क्रियाएं करते हैं परन्तु जब अधिक लाभ नहीं होता, तो इसे छोड़ देते हैं। इस पर विचार करना है कि उन्हें सफलता क्यों नहीं होती।

योग के साधक प्रेमी जो आरम्भिक आवश्यक बातें है उन पर

ध्यान नहीं देते, जो कि योग के लिए आधार शिला हैं। जिस वस्तु की नीवन हो वो उपर कैसे उठ सकती है जिस वृक्ष या पौधे की जड़ें ही न हों वो कैसे फली भूत हो सकता है किसी महल-या मकान ने खड़ा होना है-अपनी नीव पर-जिस मकान की बुनियाद ही न हो वो कैसे खड़ा रह सकता है। अतः योग साधना भी बुनियादी शिला धार के बिना सफल नहीं हो सकता, अब वो बुनियादी नियम बतलाते हैं जिन पर ध्यान न देने सेकुछ लाभ नहीं होता और जिन पर आचरण करने से;योग में सफलता प्राप्त करता है।

१-शरीर का स्वस्थय होना:—जिस का शरीर स्वास्थय है वो योग का अधि कारी है। स्वास्थय के लिये दो बाते आवश्यक हैं एक उचित अहार दूसरे कब्ज़ न रहने देना। अहार के ठीक न होने से खास्थय भी खराब होता रहता है और कब्ज़ भी उतपन्न होती है। जिस व्यक्ति को अजीर्ण-(पाचक शक्ति मन्द होना) और कब्ज़ रहती हो वह योग के योग्य नहीं हो सकता।

प्रायः रोगों का कारण-अधिक खाना हैं। हमारे शास्त्र अधिक खानो का निषेध करते हैं। न अधिक खाने से न बहुत कम खाने से योग हो सकता है। अर्थात आहार न बहुत अधिक हो न बहुत कम खाना। पेटू व्यक्ति के लिये पाकशाला एक ग्रह के समान होती है उनका बावरची इस मन्दिर का पुजारी होता है खाने का मेज़ उनका देवता, और उनका पेट परमात्म स्वरूप होता है, जिस प्रकार तेल के अधिक होने से लैम्प की लौ रूक जाती है और ईन्धन की अधिकता से अग्नि बुझ जाती है। इसी प्रकार शरीर को आहार ठीक न देने से हानि होती है। जो आहार हम खाते हैं इसका स्थूल भाग मल के रूप में निकल जाता है और सूक्ष्म भाग मूत्र पसीना तथा श्वास द्वारा चला जाता हैं। अतः मूत्र भी मनुष्य को यथा नियम आता रहना चाहिये और पसींना भ भली प्रकार आना चाहिये। और श्वास भी शरीर से

पूर्ण रूप से भर कर निकलना चाहिये, शरीर के लिये पवित्रता तथा सफ़ाई की अति आवश्यकता है। जो आहार सेवन किया जाये, बर्तन जो प्रयोग किये जायें, वायु जिस से श्वास उच्छ्वास, पानी जो पिया जावे, निवास स्थान, पहनने के वस्त्र तथा बिस्तरे जिन पर आराम किया जाता है इस सब वस्तुओं की सफाई-तथा पवित्रता अति आवश्यक होनी चाहिये।

२. योग सिद्धि के लिये मन ठीक हो मन की ठीक अवस्था जहां यौगिक क्रियाओं के लिए अति आवश्यक है वहां शरीर का ठीक होना भी आवश्यक तथा लाभकारी है। मन को स्थिर करने के लिये शास्त्रों ने अनेक उपाय बताये हैं। योग शास्त्र के रचयिता पतञ्जली ऋषि ने इस के लिए पांच यम-पांच नियम बताये हैं। यदि इन पर पूर्ण रूप से आचरण किया जाये तो निःसन्देह मन ठीक अवस्था पर आजावेगा, फिर योग में उन्नति के होने में कोई बाधा न होगी। यम-नियम निम्नलिखित हैं:—

यमः—अहिंसा[1]-सत्य[2]-स्तेय[3]-ब्रह्मचर्य[4]-अपरिग्रह[5]।

नियमः—शौच[1]-सन्तोष[2]-तप[3]-स्वाधयाय[4] ईश्वर प्रणिधान[5]।

मन को विचलित करने के लिये बहार से आक्रमण होता है और अन्दर से भी। बहार से तो सांसारिक दृश्य (प्राकृतिक) और अन्य प्रलोभन होते हैं और अन्दर से विचार चूंकि मन पर दोनों ओर से आक्रमण होता है अतः दोनों ओर से रक्षा की भी आवश्यकता है इसी कारण से योग के रचयिता ने यम-नियम पृथक २ रक्खे है बाहर के आक्रमणों की रक्षार्थ यम और अन्दर के आक्रमणों की रक्षार्थ नियम हैं। बाहर की आक्रमण प्रायः यह होते हैं।

१. दूसरों से विरोध करना लड़ाई झगड़ा करना। द्वेष-भाव शत्रुता के आवेग में आकर मार पीट करना,। इन सब दोषों का उपाय यम का पहला यम अहिंसा है। जब मनुष्य स्वयं किसी को दुःख-कष्ट न दे, न कभी अपशब्द बोले, न किसी के प्रति बुरा विचार धारण करे

तब विरोध-लड़ाई झगड़ा उत्पन्न नहीं हो सकता, जब अहिंसक भाव पुर्णत्य दृढ़ तथा स्थिर हो जाते हैं तब उसके निकट वर्ती हिंसक जीव भी वैर भाव से रहित हो जाते हैं।

एक समय स्वामी विवेकानन्द जी महाराज को इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि उन्हें अभी तक ईश्वर दर्शन नहीं हुए भगवान की अनुमुति अभी तक प्राप्त नहीं हुई । उस समय वो पारिव्रजिक जीवन में थे उन्होंने अपने आप को धिकारा कि मैं कितना अभागा हूँ जो मनुष्य शरीर पाकर भी ईश्यर साक्षात कार न कर सका । अतः उन्होंने बन में प्रवेश किया, सूर्यास्त हो चुका था। समस्त बन अंधकार मय था। स्वामी जी भूख से व्याकुल थे कुछ समय पश्चात् उन्हें एक सिंह दीख पड़ा । स्वामी जी हर्ष से गद २ हो उठे और दिल में कहा, भगवान ने ठीक समय पर इस शेर को भेजा है । बेचारा भूखा है मैं भी भूखा हूँ पर मैं अपने शरीर को बचाऊँ क्यों ? इस शरीर से ईश्वर का साक्षात नहीं कर सका अतः इसको रखने का कोई उद्देश्य ही नहीं है। स्वामी जी ने ऐसा सोचकर अपने आप को सौंप देने का निश्चय किया वो शेर के सम्मुख खड़े हो गये उसके स्वाधरूप में, परन्तु शेर की अहिंसात्मिक वृति उनके दर्शन से बदल गई। और वह दूसरी ओर चला गया । कवि लिखता है।

२. दूसरे व्यक्तियों से झगड़ा-फसाद इस कारण से हो जाता है कि कोई व्यक्ति सौदा करके मुकर जाता है । प्रण करके पूर्ण नहीं करता। कम तोलता है कम मापता है अस्तय सूचना देता है झूठा दोष लगा देता है। वास्तविक सत्य को प्रकट नहीं करता । यह सारे दोष कभी खड़े नहीं हो सकते यदि व्यक्ति सत्य को धारण करे तथा अचरण करे। इसलिये दूसरा यम 'सस्त्य' लिखा है। जब सत्य के पालन करने से पूर्ण परिपक्व हो जाता है तब वह जिसको वरदान अथवा शाप देता है वो सत्य हो जाता है।

३. फसाद होने का एक कारण यह भी होता है कि मनुष्य दूसरे का अधिकार छीनना चाहता है। दूसरे की सम्पति पर शासन जमाना चाहता है। दूसरे की वस्तु बिना आज्ञा बिना सूचना दिये उठा लेता है। या यूं ही छीन लेता है। इस प्रकार के कारण ही लड़ाई झगड़े और फसाद की बुनियाद बनते हैं। यह सब दूर हो जाते हैं यदि मनुष्य तीसरे यम 'अस्तेय' को अपने जीवन में ढाल ले। अस्तेय शब्द के अर्थ हैं, चोरी न करना। अर्थात वह वस्तु जिस पर मनुष्य का अधिकार-हक्क नहीं है-उसे न तो लेना और न लेने की इच्छा करना, जब साधक में चोरी का अभाव पूर्ण प्रतिष्ठित हो जाता है तब पृथ्वी में जहां कहीं। भी गुप्त स्थान में पड़े हुए समस्त धन उसके सामने प्रकट हो जाते हैं अर्थात इसकी जानकारी में आ जाते हैं।

४. झगड़े-फसाद होने का एक बड़ा भारी कारण यह भी है कि दूसरों की बहू-बेटियों को बुरी दृष्टि से देखना और उन्हें भगा ले जाना पर स्त्री से व्यभिचार करना। इसके कारण बड़े भयानक झगड़े उत्पन्न हो जाते हैं। इन सभी दोषोंका उपाय चौथा यम "ब्रह्मचर्य" है। अर्थात मन वचन और कर्म से किसी भी समय किसी भी अवस्था में-किसी भी स्थान पर-पर स्त्री के सम्बन्ध में कुभावना न करना, किन्तु उस को माता-बहन-बेटी की दृष्टि से देखना। इसी प्रकार शुद्धाचारी होने के कारण मनुष्य हर स्थान पर आदर और सम्मान पाता है। ब्रह्मचर्य और विद्या ध्ययन का पारस्परिक सार्थक सम्बन्ध है। वीर्य से बुद्धि कुशाग्र और स्मरण शक्ति तीव्र होती है। ब्रह्मचर्य से निरोगता और सफूर्ति की सम्प्राप्ति होती है। ब्रह्मचर्य से विचारों की पवित्रता और भावनाओं की निर्मलता संसिद्ध होती है। ब्रह्मचारी ही निर्विकार और वासना रहित होता है। ब्रह्मचारी अप्रमादी-निरालसी होता है। ब्रह्मचारी ही आत्म-साधना और जितेन्द्रियता निष्पादन करके सुशिक्षा और ज्ञान प्राप्त करता है। कवि लिखता है:—

ब्रह्मचर्य सुख खान है-धारण करो सुजान।
विद्या-बल-जीवन बड़े--रोग हुऐ सब हान॥
धर्म-आयु-अरोग्यता, और मोक्ष का द्वार।
ब्रह्मचारी ही को मिले-व्भचारी दुःख भार॥
सारे जगमें देखा है ब्रह्मचर्य का मान।
बल-आयु-अरोग्यता सर्व गुणों की खान॥

---

५. पांचवा कारण झगड़े-फसाद का यह होता है कि मनुष्य बहुता सा धन कमाकर उसी पर आसन जमाकर बैठ जाता है। बहुत से मकान मोल ले कर अपने अधिकार में कर लेता है। बहुत सी भूमि प्राप्त कर के उस का स्वामी बन कर बैठ जाता है। वह सारी अपने ही स्वार्थ में लगा लेता है। न दूसरों की सहायता करना, न दान देना। न दीन दुखियों की अवस्था को देख कर उन पर दया करना, बन्धू वर्ग की सहायता तक न करना, यदि मनुष्य पांचवें यम अपरिग्रह को धारण कर लेवे(अर्थात धन को संग्रह न करना) तो सब झगड़े दूर हो जाते है। अपरिग्रह का भाव पूर्ण हो जाने पर साधक को पूर्व जन्मों की सब बातें ज्ञात हो जाती हैं। अर्थात मैं पहले किस जन्म में था, मैंने उस समय क्या २ कार्य किये। यह सभी स्मरण आ जाता है। और इस जन्म की बिती बातें भी याद आ जाती हैं। आज Soaalism (समाजवाद) का नाद बजाया जाता है और कहा जाता है कि यह नई तारीख (अन्दोलन) है परन्तु हमारे वेद शास्त्रों में यह पहले ही विद्यमान है।

म ग्रधाःकस्य स्विद्धनम्. यजु. अ० ४० म० २

अर्थातः-दूसरों के धन का लालच न कर। आगे कहा है तेन

त्यक्तेन भुंजी था-अर्थात:-अपने भोग पर सन्तुष्ट रहे । वर्तमान साम्यवाद में यह दोष है इसमें तो गवर्नमेंट दन्ड की शक्ति से दौलत मन्दो की कमाई को छीन कर दूसरों को देना चाहती है इसका परिणाम् यह होता है लोगों की अधिक कमाने की रूची ही उत्पन्न नहीं होती, उनकी योग्यता कम हो जाती है परन्तु जहां यह भाव बनाया जाऐ कि कमाना भी खूब है परन्तु उनको जोड़ कर नहीं रखना, परन्तु बाट देना है क्योंकि यह मनुष्य का कर्तव्य हैं कि शुभ कामों में लगावे, तो ऐसी अवस्था में केवल मनुष्य का धन कमाने का उत्साह कम नहीं होता, परन्तु स्वयं बांट देने से उसे प्रसन्नता और आत्मिक शांति प्राप्त होती है और उत्साह को बढ़ाती है । बुद्धि शुद्ध होकर उतम विचार प्रगट करती है अतः यह समाजवाद की उतम विधि है ।

हमारे ऋषियों की बुद्धि कितनी महान और उत्तम थी कैसे सुन्दर साधन और उपाय हमारे लोक परलोक दोनों प्रकार की उन्नति के लिए बताए हैं । और यह साधन अनुभव किये हुए हैं परन्तु हम इन बातों पर ध्यान न देकर यह कह डालते हैं कि यह तो पुरानी बातें है । क्योंकि आधुनिक शिक्षा पश्चमी सभ्यता की है । पश्चिम की ओर सूर्य अस्त होता है और पूर्व दिशा से सूर्य प्रकाशित होता है । अब भारतवासियों का बुद्धि पश्चमा रूप अर्थात अन्धकार की पुजारी बनी हुई है आज पश्चमी लोग जो हमारे शास्त्रों-वेदों से शिक्षा ले कर पुनः लिख कर अपनी मुहर लगा देते हैं उस पर हम अपना सर झुका कर वाह २ करते हैं और उनकी बातों को मान लेते है ।

जो मनुष्य इन पांच यमों पर आचरण कर ले, असम्भव है कि संसार में उसको कभी कोई वखेड़ा सामने आये । इनको उपेक्षा करने से आज सब झगड़े फसाद देश और संसार में युद्ध हो रहे हैं ।

अब रहे अन्दर के झगड़े इनका कारण विचारों की भिन्नता, स्मरण रहे प्रत्येक मनुष्य अपने सदाचार का अनुभव अपने विचार से

लगा सकता है जो उस के हृदय में उस समय उठते हैं कि जब वह वे सुध सा बैठा होता है। अर्थात किसी बात पर विचार नहीं कर रहा होता। जब ऐसी अवस्था में मनुष्य सचेत सा बैठा होता है। उस समय मन अपनी वास्तविक अवस्था के अनुसार विचारों का तांता लगाता है। वह विचार ही मनुष्य के जीवन को आगे ले जाने वाले होते हैं। जो कुछ मनुष्य करता है जैसा वह औरों से वर्ताव करता है। और जो भी उसके कर्म होते हैं। वह सब इन्हीं विचारों का ही परिणाम होते हैं। मनुष्य के जीवन की नींव उसके वही विचार होते हैं। अतः विचारों का आन्तरिक आक्रमण जो मनुष्य के मन पर पड़ता है वह अति प्रबल होता है। इस आक्रमण का रोक के लिए महर्षि पतञ्जली ने हम को पांच नियम बताये हैं जिस प्रकार के बाह्य झगड़े पांच प्रकार के यमों द्वारा दूर करने का साधन बतलाया है। उसी प्रकार से अन्दर के आक्रमणों को भी पांच प्रकार से बांट कर उनके उपाय के लिए भी पांच नियम बनाए हैं। ये इस प्रकार बनाए गए हैं।

मनुष्य के विचार यदि अपवित्र हों और दूसरों का बुरा चिन्तन करे और ईर्ष्या-द्वेष-घृणा-प्रतिकार साम्प्रदायिकता की भावनाएं हृदय में उत्पन्न हों। तो ऐसे विचारों की रोक थाम के लिए पहला नियम 'शौच' बताया है। अर्थात पवित्रता बाहर की शुद्धि के अभ्यास से साधक को अपने शरीर में पवित्र बुद्धि हो कर उस में वैराग्य हो जाता है। अर्थात उसमें आसक्ति नहीं रहती और दूसरे सांसारिक मनुष्यों के संग में भी प्रवृत्ति और आसक्ति नहीं रहती। अन्दर की शुद्धि का फल बतलाते हैं। अन्तःकरण की शुद्धि—मन में प्रसन्नता—चित्त की एकाग्रता। इन्द्रियों का वश में होना और आत्म साक्षात्कार की योग्यता होती है।

मैत्री आदि की भावना के द्वारा अथवा जप तप आदि अन्य किसी साधन द्वारा आन्तरिक शौच के लिये अभ्यास करने से राग द्वेष ईर्षा आदि भूलों का अभाव होकर मनुष्य का अन्तःकरण निर्मल और

पवित्र हो जाता है। मन की व्याकुलता नष्ट हो कर उसमें सदैव प्रसन्नता बनी रहती है। विक्षेप-दोष का नाश हो जाता है। अतः उसमें आत्म-दर्शन की योग्यता आ जाती है।

दूसरे प्रकार का जो मनुष्य के मन पर आन्तरिक आक्रमण होता है वह यह कि औरों के धन-सम्पत्ति-महल-माड़ी-बाग़-बगीचे-नौकर-चाकर-आरामो आसायश के सामान को देख कर जलते रहना है। इस प्रकार के आक्रमणों का उपाय 'सन्तोष' अर्थातः—मनुष्य को जो कुछ प्राप्त हो उसी में सन्तुष्ट रहें। सन्तोष से सर्वोत्तम सुख लाभ होता है। इससे उत्तम दूसरा कोई सुख नहीं हैं। सन्तोष के अभ्यासी में तृष्णा का अभाव हो जाता है। उस अवस्था में जो सात्विक सुख मिलता है उसकी बराबरी दूसरा कोई सांसारिक सुख नहीं कर सकता। अमर शहीद पं० लेखराम जी के वेतन में स्वर्गीय महात्मा मुन्शी राम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) जब प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान थे। पांच रु० उनके वेतन में बढ़ा दिये। जब पं० लेख राम जी को ज्ञात हुआ कि उनके वेतन में पांच रुपये बढ़ाये गये हैं तो बड़े दुखी होकर गुरुदत्त भवन लाहौर सभा के आफ़िस में पहूँचे तो महात्मा मुन्शी राम जी से दुखी हो कर कहा, कि आप ने मेरे वेतन में पांच रुपये क्यों बढ़ाए हैं ? क्या आप मुझे लोभी बना कर मेरा जीवन जन्म भ्रष्ट करना चाहते हैं। क्या कभी मैंने कहा है कि मेरा निर्वाह पूरा नहीं हो रहा ? क्या यह पूँजी आप की है, वा गुरू दयानन्द की। काटो मेरे वेतन में से पांच रुपये। प्यारे ! यह है सन्तोष ! गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है–

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणुमे भरतर्षभ।

अभ्यासाद्रमते यत्र दुखान्तं च निगच्छति॥ १८०३६

अर्थात—हे अर्जुन—सुख तीन प्रकार का होता है अभ्यास से मनुष्य उस को प्राप्त कर लेता है और दुःख नष्ट हो जाता है।

यत्त दग्रो विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्म बुद्धिप्रसाद जम्॥ १८०३६

अर्थात—जो दीखने में विष की भान्ति प्रतीत हो परन्तु परिणाम अमृत तुल्य है। आत्मा तथा बुद्धि प्रसन्नता से उत्पन्न हुए उस सुख को सात्विक सुख कहते हैं। कवि लिखता है=

गौ धन-गज धन-सबधन-रत्न धन एकसमान।
जब आवैं सन्तोष धन, सब धन धूली समान॥

३—तीसरी प्रकार का जो मनुष्य के मन पर आक्रमण होता है वह यह है—मनुष्य सोचता है मुझ से सर्दी-गर्मी सहन नहीं होती। मैं कष्ट नहीं उठा सकता। मैं पुरुषार्थ नहीं कर सकता, मुझे आराम मिलना चाहिए। बैठे बिठाए सब कुछ प्राप्त हो जाना चाहिए। यह आलस्य-प्रमाद-निकम्मा पन मनुष्य के मन को बहुत हानि पहुँचाते हैं इनका उपाय तीसरा नियम 'तप' बताया है। अर्थात:—अपने वर्णाश्रम की परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म का पालन करना और उसके पालन करने में जो शारीरिक या मानसिक अधिक से अधिक कष्ट प्राप्त हों उन्हें सहर्ष सहन करना इस का नाम 'तप' है। व्रत-उपवास आदि भी इसी में आ जाते हैं। निष्काम भाव से इस तप का पालन करने से ममुष्य का अन्तःकरण अनायास ही शुद्ध हो जाता है। तप के प्रभाव से जब अशुद्धि का नाश हो जाता है तब शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है। इसके अभ्यास से शरीर और इन्द्रियों के मल का नाश हो जाता है। तब योगी का शरीर स्वस्थ-स्वच्छ और हलका हो जाता है। मनुष्य यह विचार करे कि मुफ़्त खाने से बढ़ कर कोई पाप नहीं। मैं मुफत खोरा नहीं बनूं। किसी के आगे हाथ न फैलाऊं, किसी के आगे गिड़गड़ाऊंगा नहीं। क्योंकि संसार आलस्य-प्रमाद आराम चाहने वालों का नहीं है। जो मनुष्य तप का व्रत लेगा वह सांसारिक संकटों-मुसीबतों-

दुःख विपत्तियों के साथ सघंर्ष करता हुआ आगे बढ़ सकेगा और वह अपना कल्याण पथ खोज सकता है। वेद में कहा है—

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये यजू अ० १५ मं० ३९

अर्थात—संसार में मन को भद्र रख। संसार युद्ध क्षेत्र है। जीवन एक संग्राम है। श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन को कहा है कि संसार में जहां भी तू स्थित है। युद्ध क्षेत्र में खड़ा है) चाहो, या नहीं चाहो। संग्राम तुझे करना होगा। युद्ध से बाहर भाग जाना चाहे, तो भी तू युद्ध से बच नहीं सकता। तू जहां भी जाएगा युद्ध तेरा पीछा करेगा। आत्म हत्या करके या मर कर क्या तू झंझटों से छूट जाएगा। नया शरीर धारण करके तुझे पुनः जीवन संग्राम करना होगा। गृह और परिवार त्याग कर क्या संग्राम समाप्त हो जाएगा, कुटीरों और आश्रमों में भी तुझे जुटना होगा। समाज का बहिष्कार करके क्या तू संग्राम से बच सकेगा। समाज से दूर रहकर भी तुझे सामाजिक संग्राम से जूझना होगा।

राजनैतिक संग्रामों से जी मत चुरा। हिमालय की चोटी पर—ध्रुव प्रदेश में—सागर के किनारे-कहीं भी जा कर बस-राजनीति तेरा पीछा न छोड़ेगी। प्रत्येक मोर्चे पर वीरता के साथ सँग्रामकर—दस्युओं से लड़--पाप से लड़=अत्याचार से लड़—अन्याय से लड़—भ्रष्टाचार से लड़—अधर्म से लड़-राजा से लड़—प्रजा से लड़—दिल खोल कर लड़—डट कर लड़—किन्तु भद्र मन के साथ लड़-यहां संग्राम कर-वहां संग्राम कर-इधर संग्राम कर—उधर सँग्राम कर—सर्वत्र सँग्राम कर अन्त तक सँग्राम कर किन्तु प्रत्येक सँग्राम में सदा सर्वदा सतत सन्तत, निरंतर अपने मन को भद्र बनाये रख। इसी में जय है। यही विजय है यही सर्वविजय है। मनु भगवान ने भी लिखा है:—

विद्या तपोभ्याम भूतात्मा ॥

अर्थात:-जीवात्मा-तप-ज्ञान दोनों की समता से सफलता प्राप्त कर सकता है।

वीर सावरकर ने एक पार्टी भारत की स्वतन्त्रतार्थ बनाई हुई थी—एक व्यक्ति तुलसी राम उनके पास गया-कहा, मुझे अपने सँग ले लो वीर सावरकर ने कहा, पहले तुम राष्ट्रीय सेवार्थ तैयारी कर आओ। वह चला गया कुछदिनों के पश्चात आया और कहा,मैं तैयारी कर आया हूँ, तो वीर सावरकर ने कहा आओ, उसे कमरे के भीतर ले गये, और कहा, मेज़ पर अपना हाथ धरो। तुलसी राम ने अपना हाथ मेज़ पर रख दिया अब वीर सावरकर ने एक राष्ट्र सेवक से कहा, कि एक तीक्ष्ण छुरा लाओ। वह लाया, फिर कहा इसके हाथ में चुभो दो। सेवक ने छुरा ऐसा चुभोया-कि छुरा हाथ के पार निकल गया। और रक्त की धारा चल पड़ी। पर तुलसी राम ने उफ तक न की—चाकू हाथ से निकाला गया—फिर पूछा आप को कष्ट हुआ था-तुलसी राम ने कहा, मेरा ध्यान राष्ट्र माता की परतन्त्रता की बेड़ियों के तोड़ने में लगा हुआ था-मुझे कुछ मालूम नहीं हुआ कि मेरे हाथ को क्या हो रहा है ? प्यारे ! यह है तप, और राष्ट्र भक्ति। परन्तु वर्तमान अवस्था में राष्ट्रीय अधिकारियों को देखो। दूर न जायें। पंजाब की अवस्था सामने है-ये कुत्तों की भान्ति एक दूसरे से भोग और अधिकार-लेने पर लड़ रहे हैं सदाचार का दिवाला निकाला जा रहा है। जो राष्ट्रीय रक्षा और उन्नति की नींव है। क्या इन दूध पीने वाले मजनुओं ने भारत को जकड़ी जंजीरों से स्वतन्त्र कराया था ? क्या अब यह स्वतन्त्रता प्राप्त की हुई भारत की रक्षा यह स्वार्थी अधिकारी कर सकेंगे ? नहीं नहीं कदाचित नहीं, यह स्वयं डूबेंगे, भारत को भी ले डूबेंगे। अब तो महात्मा गाँधी का इन को शाप मिल रहा है क्योंकि वह अहिंसात्मक था—परन्तु यह हिंसक मांस—अन्डा मछली-बे जबानों का रक्त पीने वाले-शराब-सिग्रेट पान करने-सेनेमा देखने सत्य न्याय के नाश करने वालेबने हुए

हैं। कोई मरे या जीवे-सुथरा घोल पताशे पीवे-कीभान्ति है। भगवान अब भारत की रत्तार्थ फिर से कोई महात्मा गाँधी जैसी अहिंसक तपस्वी आत्मा को भेजें ॥

चौथा आक्रमण जो विचारों द्वारा मन पर होता है। वह यह कि मनुष्य को भ्रम या सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि जो कार्य वह करने लगा है ठीक है या नहीं—ऐसे भ्रम हो जाने से परिणाम यह होता है मनुष्य किसी कार्य को या साधन को एकाग्र वृत्ति तथा श्रद्धा भाव से पूर्ण निष्ठा से-पूरी लगन से नहीं कर सकता। इस आन्तरिक आक्रमण का साधन शास्त्रकारों ने चौथा नियम स्वाध्याय बतलाया है। जिस से अपने कर्तव्य अकर्तव्य का बोध हो सके, ऐसे वेद-शास्त्र-महापुरुषों के लेख आदि का पठन पाठन और भगवान के ओ३म नाम-गायत्री; जाप करना स्वाध्याय है।

स्वाध्याय दिष्टि देवता सं प्रयोग ॥४४॥

भावार्थः—स्वाध्याय से इष्ट देवता की भली भान्ति प्राप्ति (साक्षात्कार) हो जाती है।

वेद शास्त्राभ्यास और मन्त्र-जप-रूप-स्वाध्याय के प्रभाव से योगी जिस ईष्ट का दर्शन करना चाहता है। उसका दर्शन हो जाता है:-

पांचवीं प्रकार का जो आक्रमण मन पर होता है वह कुछ ऐसा होता है-कि मैं यह कार्य करने तो लगा हूँ। यह साधन करना आरम्भ तो किया है परन्तु मुझ में शक्ति ही क्या है? मैं तो एक निर्बल मनुष्य हूँ और अल्पज्ञ हूँ-पता नही यह कार्य कर सकूँ गा या नहीं सम्भव है मेरी-निर्बलता ही मेरे इस मार्ग में बाधा डालदे। यह आक्रमण बड़ा भारी है इत्यादि। ऐसा भाव तो बने बनाये कार्य को बिगाड़ने वाला होता है। यह आक्रमण बड़ा भारी है क्योंकि निर्बल और उत्साह रहित विचार से बड़कर मनुष्य को उन्नति के मार्ग से गिराने में और कोई नहीं। इसी कारण को असफल बनाने के लिए ऋषियों ने पांचवां

नियम "ईश्वर प्राणिधान"—अर्थात विश्वास बताया है।

ईश्वर की शरणागति से साधन में आने वाले विघ्नों का नाश हो कर शीघ्र समाधि निष्पन्न हो जाती है। क्योंकि ईश्वर पर निर्भर रहने वाला साधक तो केवल तत्परता से साधन करता रहता है। उसे साधन के परिणाम की चिन्ता नहीं रहती उसके साधन में आने वाले विघ्नों के दूर करने का और साधन की सिद्धि का भार तो ईश्वर के जिम्मे पड़ जाता है। अतः साधन का अनायास और शीघ्र पूर्ण होना स्वाभाविक ही है।

जब एक तहसील का चपड़ासी या पुलिस कांसटेबल राजा की वर्दी पेटी पहन कर बाहर जाता है। तब वह अकेला होने पर भी गौरव से जाता है। बाहर जा कर भी अच्छे २ भद्र पुरुषों पर शासन करता है। क्यों? उसे विश्वास है कि मेरे पीछे राज्य शक्ति है। इसी कारण से वह निर्भय रहता है। इसी प्रकार से जिस मनुष्य के हृदय में ईश्वर का पूर्ण विश्वास और प्रभु की अपार शक्ति का भाव अपनी सहायता के लिए उपस्थित हो—उसके हृदय में निर्बलता के विचार कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकते। एक नन्हा बच्चा जब अपनी माता की अंगुली पकड़ कर जा रहा होता है तो निकट से गुजरने वाले मनुष्यों और पशुओं की वह रत्ती भर भी परवाह नहीं करता—और पूर्ण निश्चय से निर्भय हो कर नाचता-कूदता चला जाता है क्योंकि उसे विश्वास है कि मैंने माता का सहारा लिया हुआ है वह मुझे कभी भी हानि न पहुँचाने देगी इसी प्रकार से जिस व्यक्ति ने उस जगत जननी जगतमाता का सहारा लिया हुआ है तो उसके हृदय में भी किसी प्रकार से भय या निर्बलता का भाव आ सकता है।

स्वामी विवेकानन्द जी महाराज काठियावाड़ देश में गाड़ी में बैठे जा रहे थे। वह पैसा अपने पास न रखा करते थे-मार्ग में स्टेशनों पर सेठ लोगों की तरफ से पानी पिलाने का प्रबन्ध होता था-परन्तु

पानी पिलाने वाले पैसा लेकर पानी पिलाते थे। स्वामी जी को प्यास लगी हुई थी। दैवयोग से गाड़ी के उस डिब्बे में एक सेठ आकर बैठा-सुराही पानी की भरी हुई साथ थी-स्वामी जी ने उससे पानी मांगा-तो सेठ ने स्वामी जी की ओर घूर कर देखा और कहा, कितना मोटा-ताज़ा नव युवक है घर से लड़कर गेरुवे कपड़े पहन कर साधु बन गया, तुझे शर्म आनी चाहिये फिर दूसरे से पानी मांगता है इत्यादि स्वामी जी यह उत्तर सुन कर शांतचित रहे, आगे एक जंकशन पर गाड़ी रुकी दूसरी गाड़ी में परिवर्तन करना था, सभी लोग गाड़ी से निकल कर मुसाफिर ख़ाना में चले गए,सेठ भी मुसाफिर खाना में जा बैठा, रोटी का डब्बा खोला सुराई से पानी का गिलास भरा पुनः स्वामी जी को चिड़ा २ कर कहने लगा,देखा कैसे आनन्द से बैठे, हम खाना खा रहे हैं।इतने में एक व्यक्ति स्वामी जी की सेवा में पहुँचा नतमस्तक होकर नमस्कार की और कर जोड़ प्रार्थना की महाराज! चलिये भोजन करें, स्वामी जी ने कहा प्यारे। मैं तेरा परिचित्त नहीं हूँ आप भूल कर मुझे भोजन करने को कह रहा है मैं तो अभी गाड़ी से उतरा हूँ। उस आगन्तुक ने कहा महाराज! मैं यहां पर दुकानदार हूँ, स्टेशन पर रहता हूँ मैं भोजन करके आराम करने लगा तो मुझे अन्तःकरण से प्रेरणा मिली कि जाओ स्वामी जी स्टेशन पर मुसाफिर खाना में बैठे हैं वह प्यासे हैं उनको पानी पिलाओ-भोजन कराओ, मैं ने आँख खोली, फ़िर सो गया तो फिर मुझे डांट कर कहा कि तुम जाते क्यों नहीं स्वामी जी प्यासे हैं स्वामी जी ने पूछा किस ने आपको कहा है दुकानदार ने कहा कि मुझे मेरे राम ने स्वप्न में आकर कहा है और आपको दिव्य मूर्त्ति भी दिखलाई आपका शुभ नाम क्या स्वामी विवेकानन्द जी है। यह बात सुनकर वह सेठ हैरान होकर सहसा स्वामी जी के चरणों में जाकर क्षमा मांगी, स्वामी जी ने जाकर जलपान कर भोजन किया फिर दूसरी गाड़ी पर स्वार होकर आगे को चल दिये।

कवि लिखता है:-

गुड़ गांठ नहीं बांधते, जब देवे तब खायें, ।
गोबिन्द तिनके पीछे फिरें, मत भूखे रह जायें ॥

प्यारे देखा ! किस प्रकार से अपने शरणागत की प्रभु देव रक्षा करते हैं यह है ईश्वर प्रणि धान ।

दया नम्रता, दीनता, क्षमा, बल, सन्तोष ।
इनको ले स्मरण करें, निश्चय पावे मोक्ष ॥

भागती फिरती थी दुनियां, जब तलब करते थे हम ।
अब के जब नफरत हुई, वो बेकरार आने को है ॥

प्रभुता को हर कोई भजे, प्रभु को भजे न कोए ।
कबीरा ! जो प्रभु को भजें, प्रभुता चेरी होए ॥

भोजना च्छादने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः ।
यो ऽसौ विश्वम्भरो देवः सार्कि दासो नुपेक्षते ॥

भावार्थः—देखो, अहार आदि के लिए व्यर्थ चिन्ता करते हैं जो भगवान समस्त विश्व के जब जीवों का भरण पोषण करता है क्या वह अपने सेवकों को कभी भूल सकता है ? अवस्था भेद मिटाकर सब प्रकार से अभय हो जाना अर्थात अपने में सन्यास से सत्य का अनुभव कर लेना ही संन्यास है, प्रत्येक पीली धातु स्वर्ण नहीं होती, प्रत्येक खान से सोना नहीं निकलता । सोना कभी मिट्टी के भाव नहीं बिकता, अतः प्रत्येक गेरवे वस्त्र धारी सन्यासी नहीं हैं । मुंड मुंडाने और भस्म रमाने से कोई संन्यासी नहीं बनता, जो अहम और ममत्व से उपर उठ गया है वह संन्यासी है। संन्यासी अजय होता

है, वो ब्रह्म कवच पहनता है, और ब्रह्म प्रसाद में निवास करता है, वह ब्रह्मोदन का भक्षण करता है और ब्रह्मामृत का पान करता है। संन्यासी ना-संस्था और सम्प्रादय की परिधि में समाता है और न देश औरराष्ट्र की सीमा से सीमित होता है, संन्यासी कभीं किसी के अधीन नहीं होता, कभी किसी से पराजित नहीं होता कभी कहीं भयभीत नहीं होता, आशा और निराशा उसका स्पर्श नहीं करती। संन्यासी अधर्म और अन्याय का क्षय तथा धर्म और न्याय उदय करता है। वह विरोध में निरोध करता है। परन्तु पग पीछे नहीं हटाता। उसके दंड में दया, और कमन्डल में क्षमा। संन्यासी को कोई झुका नहीं सकता, दबा नहीं सकता वो नितान्त, अदम्य और अदीन होता है वो फौलाद के सम्मान कठोर, पर मधु के समान मधुर होता है।

बाहय जगत आन्तरिक जगत का प्रतिनिधि है ! देखने में तो वाहय जगत बड़ा विस्तृता प्रतीत होता है और आन्तरिक जगत छोटा सा, परन्तु आन्तरिक जगत के विस्तार की कोई सीमां नहीं वाहय जगत की तो तोल माप हो सकती है- परन्तु आन्तरिक जगत की तोल-माप करना असम्भव है-इन दोनों की अवस्था एक दूसरे पर निर्भर है, जो मनुष्य वाहय संसार में सफल नहीं हुआ, वह आन्तरिक संसार में भी कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता बलवान और तेज चलने वाला घोड़ा-अन्दर-बाहर-पूर्व पश्चिम-उत्तार-दक्षिण हर तरफ तेजी औरस्फुर्ति से काम करेगा-परन्तु निर्बल कमजोर घोड़ा किसी तरफ भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

जो लोग योग साधन के इच्छुक है उन्हें पहले बाहय संसारिक सुधार करना चाहिऐ-जोवर्तमान काल में बहुत गिरावट की तरफ जारहा है। पहले अपना शरीर स्वस्थ्य करो बल उत्पन्न करो-व्यायाम करो-खान पान की अवस्था का सुधार करो-ब्रह्म चर्य का पालन करो। प्रत्येक कार्य के लिये पूरी तैयारी करनी आवश्यक है अतः पहले यम-नियम का पालन

करके अपने आपको योग साधन के योग्य बनाना चाहिये मानव की आत्मा चाहती है :-पूर्णसुख-पूर्ण आनन्द-पूर्ण शान्ति-पूर्ण प्रति के लिये पूर्ण से सम्बन्ध जोड़ना होगा-पूर्ण से सम्बन्ध जोड़ने के लिये साधन के अङ्ग पूर्ण ही जीवन में धारण करने होंगे। वह भक्ति किसी काम की नहीं, जो सेवा के लिये अथवा उत्तम कर्म करने लिये प्रेरणा नहीं करती,वह ज्ञान किसी काम का नहीं, जो भक्ति भाव उत्पन्न नहीं करता-इसी प्रकार से वह कर्म भी व्यर्थ है-जो ज्ञान और भक्ति की ओर प्रेरणा नहीं करता। अथवा उनका सहारा नहीं लेता।

दूसरी दृष्टि कोण से देखें, जब तक योग का अभ्यास न हो अर्थात मन की एकाग्रता न हो-तब तक न ही मनुष्य निष्काम कर्म कर सकता है-न ही भक्ति का रस ले सकता है और न ही उसे ज्ञान की सूझ पड़ सकती है। अतः यह बात अच्छी प्रकार से जान लेनी चाहिये, कि योग,-भक्ति-कर्म-और ज्ञान चारों ही आत्म उन्नति के स्तून हैं। यह चारों ही अध्यात्मिक गाड़ी के चार पहिये हैं-जो लोग केवल भक्ति में लगने का यत्न करते है और योगका ध्यान नहीं करते, वह केवल समय को व्यर्थ खोते हैं-क्योंकि जब तक भक्ति का रंग मन पर न चढ़े-तब तक वह भक्ति क्या सुधार कर सकती है। भक्ति का रंग तभी चढ़ता है जब मन योग द्वारा स्थिर हो जाए। आज हमारी आत्मिक उन्नति इसी कारण से रूकी हुई है—

जो "तत्वमसि" अथवा, "अहं बृह्मास्मि" कहने लग जाते हैं। वह अपने आप में भक्ति और प्रेम की आवश्यकता नहीं समझते। न निष्काम कर्म में श्रद्धा रखते हैं-परिणाम् यह होता है कि उनका ज्ञान कोश, फीका-फीका होता है क्योंकि वह ज्ञान उस वृक्ष की भांति होता है जिसे फल नहीं लगते-हमें आत्मोन्नति के लिये पहले योग अर्थात् मन की एकाग्रता और भक्ति से प्रारम्भ करके कर्म मार्ग पर हुए ज्ञान की ओर बढ़ना है-इसी प्रकार से हम अपना कल्याण कर सकते हैं।

प्रार्थना

हे बलों के स्रोत, शक्ति के भण्डार, तेज के पुञ्ज वीर्य निधि! प्रभु! मैं जिस ओर दृष्टिगोचर होता हूँ-हर ओर आपकी शक्ति काम कर रही है और आप का ही बल सारे कर्म चला रहा है। आपकी शक्ति इस संसार का निर्माण करती है। वह इस संसार को सभालती है सांसारिक कार्यों में बलवान आगे बढ़ते हैं निर्बल पीछे फैंक दिये जाते हैं बल वाले ही दौड़ में आगे निकलते हैं जय बलवान की होती है। निर्बल सदा पांव तले रौंदे जाते हैं-अतः बलां के स्वामी! आप मुझे बल-शक्ति प्रदान करा-ताकि मैं बलवान और शक्तिशाली बनूँ, वार्यवान-तेजवान बनूँ, और सफलता प्राप्त करूँ। पहले शरिरिक बल प्राप्त करूगाँ, अपने शरीर को दृढ़ और शकिशाली बनाऊँगा-अपना बल इतना बड़ाऊँगा कि कोई रोग मुझ पर आक्रमण न कर सके, तो पश्चात् मानसिक बल बढ़ाऊँगा, मांसिक धारण। शक्ति को दृढ़ करूँगा-शरिरिक और हृदयी-बाहय तथा आन्तरिक बल बढ़ाकर पुनः मैं आपकी ओर बढ़ूँगा। बलवान आत्मा बना कर ही मैं आपके पास पहूँच सकता हूँ-आप तक पहूँचने की गाड़ी के यही दो पहिए हैं अर्थात शरीर और मन जब तक यह पहिए ठीक अवस्था में न हों तब तक मेरी उन्नति की गाड़ी आगे कैसे बढ़ सकती है। अतः चरणों मे विनीत प्रार्थना है कि मैं आप की बल निधि से बल प्राप्त करके बलवान होकर-आप बल स्वरूप को आ मिलूँ।

मुझ में हैं अवगुण घने- तुम गुण भरे जहाज।
अब ज़ैसे कसे बने- राखो मेरी लाज ॥

———

किव लिखता है:—

हक जिसकी तरफ है, वह जबरदस्त रहा है—
सच है कि बड़े बोल का, सर पस्त रहा है।

———

उसे क्या ग़म है जिस बेड़े का यारब न ख़ुदा तू है-
उसे क्या खिज़र से मतलब है, जिसका रहनुमा तू है॥

———

तेरे महफ़ूज़ को कोई ज़रर, पहुंचा नहीं सकता।
अनासर छू नहीं सकते, फल्क धमका नहीं सकता॥

———

उसका कर्म शरीकगर, है तो ग़म नहीं।
दामने दश्त, दामने मादर से कम नहीं॥

———

ख़ुदा के दर से अगर मैं नहीं बेगाना।
तू ज़र्रा ज़राः आलम है आशना मेरा॥

———

कहने को यूँ जहाँ में, हजारों हैं यार दोस्त।
मुश्किल के वक़्त एक है, परवरदिगर दोस्त॥

———

क्या फ़िकर उसको, बहरे हवादस के जोश का।
जिस शख़्श के जहाज़ का, हो न ख़ुदा-ख़ुदा॥

———

ध्यान सिंधु मुक्ता घने, जो खोजे वह पाये।
चचंलता मन की मिटे, सहज शांति मिल जाए॥

———

जैसे दिन करके उदै, दीप जोती नस जात।
तैसे ब्रह्मानन्द में, सब आनन्द मिल जाता॥

———

ओ३म् शम्

ओ३म्

पांचवां उपदेश

सत्य संग

ओ३म को देवानामवे सद्या वृणीते क आदित्यां आदितिं ज्योतिरिह। कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशो पिबन्ति मनसा विवेनम ॥ (ऋ० म० ४ सू० २५ मं० ३)

भावार्थः—जो विद्वानों की संगति करते हैं वे सूर्यादि के सदृश सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर सकते हैं। जो निष्काम वस्तु की कामना नहीं करते वे कामनाओं की सिद्धि से युक्त होते हैं।

आदर और सत्कार योग्य माताओं और भद्र पुरुषों! संसार के सृजनहार ने यह सारा विश्व रचा। नाना प्रकार की औषधियों वनस्पतियों को उत्पन्न कर अनेक जीवों को उत्पन्न किया उसकी इस रचना की महिमा का गान करने में मनुष्य अल्पज्ञ और असमर्थ है। अब एक प्रश्न होता है कि संसार में कौनसी दुर्लभ वस्तु उत्पन्न की है। प्रश्न सुनकर श्रोता चुपचाप हैं। काई उत्तर नहीं देता। तो संतमहात्मा कहते हैं—प्यारे!

मनुष्य जन्म दुर्लभ है मिले न बारम्बार।
डाली से पत्ता गिरे फिर न लागे डार ॥

मनुष्य जन्म ही दुर्लभ जन्म है। यही दुर्लभ वस्तु है तो इसके लिए खुराक भी दुर्लभ होनी चाहिए। इस का उत्तर सन्त तुलसी दास जी ने इस प्रकार दिया है:—

सुत दारा और लक्ष्मी पापी गृह भी होय।
संत समागम हरी कथा तुलसी दुर्लभ दोय ॥

अर्थात स्त्री-पुत्र तथा धन पापी से पापी मनुष्य को भी मिल सकते हैं। परन्तु प्रभु भजन और सत्संग ये दो दुर्लभ वस्तु जो मनुष्य को आवागमन के चक्र से छुड़ा कर मुक्त कर सकते हैं, बड़े भाग्यशाली को ही प्राप्त होते हैं।

सत्संग का फल क्या मिलता है? इसका उत्तर भी संत तुलसी दास ने दिया है।

एक घड़ी आधी घड़ी आधी से भी आध।
तुलसी संगत साध की काटे कोटी अपराध॥

एक घड़ी चौबीस मिन्ट की होती है। आधी घड़ी बारह मिन्ट की, आधी से भी आध छः मिन्ट की। अर्थात यदि छः मिन्ट भी प्रभु भजन और सत्संग कर ले तो असंख्य जन्म के पापों से मनुष्य तर जाता है। अपितु ऐसा भी कहा गया है कि संतों के दर्शन से मनुष्य पवित्र हो जाता है। मंत्री आर्य समाज ने जब यह सुना (कि संतों के दर्शन करने से मनुष्य पावमान हो जाता है) तो तुरन्त बोल उठे— महाराज! हमें ऐसा नहीं मानते, ऐसा कहना लोगों को धोखा देना है। संतमहात्मा-मन्त्री जी के जोश को देखकर मुस्करा कर बोले—क्या सन्तमहात्मा के दर्शन से पापी मनुष्य पावमान नहीं हो सकता, मन्त्री,महाराज! यह असम्भव है। हम ऐसा कभी नहीं मानते।

सन्तमहात्मा—प्यारे! मनुष्य की अथवा सब प्राणियों की संसार के सामने आकृति ही होती है। इस आकृति से प्रत्येक प्राणी की यह प्रकृति और कीर्ति छुपी रहती है। जब २ कोई भी कृत्य करने लगता है वैसी ही प्रकृति आकृति में प्रकट होने लगती है। प्रकृति और आकृति का अन्योऽन्याश्रय सम्बन्ध है। और इसी से आकृति बना करती है भव्य भाव मूर्तियों को बनाते हैं और भव्य मूर्तियां देखने वालों को अपने भव्य भाव से प्रभावित कर दिया करती हैं। यह नहीं

कि वे मूर्तियां जीवन में ऐसा करती हैं परन्तु उनके जड़ चित्र भी प्रभाव डालेबिना नहीं रहते, महापुरुषों के चित्र देखने मात्र से हृदय में प्रसन्नता और भक्ति भाव उत्पन्न कर देते हैं। वीरों के चित्र अपना असर प्रकट करते हैं ऐसे ही भयानक और क्रूर स्वभाव वालों के चित्र देखने वालों को भयभीत कर देते हैं। अर्थात कीर्ति, आकृति और उपकीर्ति को वैसे ही फैलाती हैं जैसी वे होंगी।

अब आप उस महान आत्मा के जीवन को सम्मुख लाईये-जिन पर आप को पूर्ण विश्वास है. वे हैं ऋषि दयानन्द सरस्वती। ऋषि दयानन्द महाराज से विरोध करने वालों ने एक वेश्या को लोभ लालच देकर कहा कि वह ऋषि दयानन्द के पास जाकर उसको पतित कर दे। वेश्या लोभवश ऋषिदयानन्द के पास आई, तो दूर से देखा—कि वह तो आंख बंद करके बैठे हैं। वह लौट आई। विरोधियों से कहा—"कि वे आंख मूँद कर चौकड़ी लगाये बैठा है मैं क्या करूँ।" अब विरोधियों ने अधिक लोभ देकर कहा—"तू उनके निकट पहुँच कर शोर मचाना आरम्भ कर देना---कि दयानन्द ने मुझे छेड़ा है इत्यादि।" बस इतना काम कर दो जिससे वह निष्कलङ्क न रह जाये। तिस पर वह लोभाकृष्ट वेश्या ऋषि के पास फिर गई। निकट पहुँच कर ज्यों ही उनके सम्मुख हुई भूमि पर सिर रख कर बिलख बिलख (फूट २ कर) रोने लगी। और सारे भूषण उतार कर फैंक दिये। ऋषि दयानन्द ने जब आंख खोली तो कहा-ऐ माता! क्यों रो रही है? आप को क्या कष्ट है? इसी प्रकार रोती हुई वेश्या कर जोड़ प्रार्थना करने लगी-महाराज! मैं पतिता हूँ। मुझे विरोधियों ने आप को पतित करने को भेजा था। महाराज! आप मुझ अबला पर दया करो। सज्जनो! वह वेश्या उसी दिन से एक आदर्श देवी बन गई। यह बात ऋषि के जीवन चरित्र में है देख लीजिए। मंत्री जी ने जब यह बात सुनी तो सिर नीचा कर लिया और सन्त महात्मा से हाथ जोड़ कर कहा-महाराज! आप का कथन सत्य

है। हम लोग तो कोरे तर्कवादी हैं। श्रद्धा शून्य हैं। हमारी आंखें वाहर हैं। किसी ने ठीक कहा है:-

कदरे ज़र ज़रगर बदानद—कदरे जौहर जौहरी।

संतमहात्मा—प्यारे सज्जनो ! सन्तमहात्मा पारस होते हैं। पारस के सम्पर्क से लोहा भी सोना बन जाता है। अब बताईए—इस वेश्या को ऋषि दयानन्द महाराज ने क्या कोई उपदेश दिया था ? केवल ऋषि के दर्शमात्र से ही अपने पापों को सम्मुख लाकर फूट २ कर रो रही थी। पश्चाताप करने लगी थी। और पावमान हो गई। कबीर जी कहते हैं।

कबीरा संगत साध की-साहब आवें याद।
लेखे में सोई घड़ी-बाकी के दिन वाद (बरबाद)॥
बगला हंसा एक संग-मानसरोवर माहिं।
हंसा तो मोती चुगे-बगला मछली खाहि॥

एक फारसी का कवि लिखता है:—

इक ज़माने सोहबते औलिया, खुशतराज़ सदसाला तायतेरिया।
गर तू संगे खार हो मरमर बवीः चूं ब साहिब दिलरसी गौहर शवी

अर्थात योगी गुरू की संगति में एक घड़ी गुजारना सौ वर्ष की दंभ भक्ति से बढ़ कर है। ऐ मनुष्य ! चाहे तू नोकदार पत्थर की तरह है या सँगमरमर की तरहा उजड़ा हुआ है परन्तु योगी गुरू (शिल्पी) की सँगति में रहने से गौहर (मोती) बन जावेगा। एक और कवि कहता लिखता है:—

परदा-ए-ग़फ़लत में है, क्या जाने क्या क्या हो रहा।
आंख से परदा उठे तो, सब नज़र आने लगे॥
करना है तू क्या नज़र बाकी रह पैदा कर नज़र।

जिससे तुझ को तुझ में तेरा रब, नज़र आने लगे।
गर उठा दे एतबारे हस्तिए मौहोम को।
देखे जो बाद अज़ फना वह रब्ब नज़र आने लगे॥

मगर हमारी अवस्था कैसी है:—

दिल स्याह है बाल सब, अपने हैं पीरी में सफ़ेद।
घर के अंदर है अंधेरा, और बाहर चांदनी॥

दृष्टान्त हैं एक उँगली मार लोगों की ऊँगलियां काट कर पहले देवी पर चढ़ाया करता था। इसके पश्चात वो भोजन करता था। लोग इस से बड़े व्याकुल तथा दुःखी थे। महात्मा बुद्ध को इस ऊँगलीयों का समाचार बतलाया गया तो वह उसी बन को चल पड़े जिस बन में वह उँगलीमार छुप रहता था। महात्मा बुद्ध बन जा रहे थे तो एक लम्बे कद की देवी दौड़ती हुई महात्मा के सन्मुख आकर कहने लगी-"महाराज आप इधर न जावें। उँगलीमार लोगों की उँगलियां काट कर देवी की भेंट चढ़ाता है। जब तक वह देवी की भेंट के लिए कुल उँगलियां एकत्रित कर भेंट नहीं कर लेता तब तक वह भोजल नहीं करता। आज अभी तक उसकीउँगलियां पूरी नहीं हुईं वह मेरे पास आया था मैं उसकी माता हूँ और कहता है कि अब मैं तेरी उँगलियां काट कर देवी की भेंट चढ़ाऊंगा मैं धर से भाग कर निकल आई हुँ आप महात्मा हैं अतः उधर न जायें। महात्मा बुद्ध ने कहा आप मेरी चिन्ता न करें और स्वयं भी न घबरावें मैं अपनी उँगलियां उस को दे दूंगा तुम मेरे पीछे २ चली आओ जब महात्मा बुद्ध उस उँगलिमार के सम्मुख पहुँचे तो कहा प्यारे मुझेज्ञात हुआ है कि आप को देवी की भेंटार्थ आज उँगलियां पूरी नहीं हुईं बिना पूरी भेंट किये तुम भोजन नहीं करते अतः मेरे हाथों की उँगलियां काट कर देवी को भेंट करो और फिर भोजन करो उंगलिमार ने जब उपर को दृष्टि की और महात्मा बुद्ध को देखा तो वह काँपता

हुआ महात्मा बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा और उसी समय महात्मा बुद्ध का चेला बन गया इतने में पोलिस के कर्म चारी उँगलिमार की खोज करते हुऐ महात्मा बुद्ध के स्थान पर पहुँचे और पुछा हम उँगलिमार की खोज कर रहे हैं आप को उस का ज्ञान हो तो बतला दें। महात्मा बुद्ध ने कहा यदि उँगलिमार उँगली काटना त्याग दे तो फिर आप उसे नहीं पकड़ोगे पुलिस के कर्म चारी चुप हो गये जब महात्मा बुद्ध ने उँगली मार को सामने कर के कहा यह उँगली मार है पुलिस वाले उसे देख कर चकित हो गये जो सदा के लिऐ हिंसक से अहिंसक बन गया था सजजनों यह है संतो का सत्संग और उन का रंग, संत गुरू नानक जी ने लिखा है :।

बिसर गई सब तात पराई जब से साधु संगत पाई।।
नहीं कोई बैरी नहीं बिगाना सकल संगत हमारी बन आई ॥

फारसी का कवि लिखता है।

सोहबते सालहे तुरा सालहे कुनद सोबते ताले तुराताले कुन्द

दृष्टान्त

राजा, रानी दोनों वाटिका में बैठे थे एक गडरिया भेड़ बकरियों को ला कर तालाब पर पानी पिलाने को आया बकरियां जब पानी पीने लगीं तो गडरिया भी भेड़ बकरियों की तरह तलाब से पानी पीने लगा यह देख कर राजा ने रानी से कहा गडरिया पिछले कर्मों के फल के अनुसार बकरियों की तरह पानी पी रहा है रानी ने कहा महाराज ! यह संगती करण का प्रभाव तथा संस्कार है यह अच्छी संगति से अच्छा बन सकता है और बुरी संगति से बुरा।

राजा—क्या यह राजा बन सकता है ? रानी नेउत्तर दिया-हां, यह राजा भी बन सकता है। राजा ने कहा-यह राजा नहीं बन सकता। इस

वाद-विवाद में राजा को क्रोध आगया और रानीको घर से निकल जाने को कहा। रानी ने तत्काल ही भूषण उतारे; तो राजा ने कहा-ये भूषण भी साथ ले जाओ। अब रानी राजा की आज्ञा के अनुसार घर से चलकर उसी गडरिये के पास जा पहुँची और गडरिये से कहा, ये सारी भेड़ बकरियां बेच दो। उसने निलाम कर दीं। अब रानी ने उसे पढ़ाना आरम्भ कर दिया। भेड़ बकरियों के निलाम करने पर जितनी रकम प्राप्त हुई थी, वह समाप्त हो गई तो रानी ने अपना जेवर देकर कहा- इसे शहर में लेजाकर बेचो-पांच सौ रूपया मिलेगा। वह नगर में जेवर बेचकर पांच सौ रूपया ले आया। इस पर दोनों निर्वाह करने लगे। जब वह अच्छा पढ़ लिख गया तो रानी ने गडरिये से कहा-तुम राजा के दरबार में जाकर बैठा करो। वहां जो कोई नई बात हुआ करे, मुझे आकर सुनाया करो। गडरिया प्रति दिन दरबार में जाकर बैठता। एक दिन एक और राजा ने दरबार में तीन पुतलियां भेजीं और कहा इनकी जुदा २ कीमत डालो और लिखकर भेजो। अब मन्त्रीमंडल से कहा गया कि इनमें क्या भेद है? जब कि इनकी शकल-रंग-रूप-लम्बाई-चौढ़ाई-तोल माप एक समानहैं। परन्तु उत्तर किसी ने न दिया गडरिये ने आकर रानी से कहा-बहिन जी! आज दरबार में यह नई बात हुई है। पुतलियों की अवस्था बता दी। रानी ने गडरिये से कहा-कि तुम कल दरबार में जाकर कहना कि इन पुतलियों का उत्तर मैं दूगाँ किन्तु कल। गडरिया दरबार में गया फिर मंत्रिमंडल के सम्मुख पुतलियां लाई गईं ताकि उनका उत्तर दिया जावे। पर सभी चुप। तो गडरिये ने कहा-महाराज! इनका उत्तर मैं कल दूंगा। इतना कह कर चला आया। रानी को समाचार सुनाया। उसने गडरिये को तीन सलाईयां देकर कहा-कि इनको ले जाओ। तीनों को पुतलियों के कान में डालना जो एक कान से दूसरे कान से निकल जावे, वह तीसरे दर्जे की। जो सलाई कान से निकल कर मुंह से निकल जावे, वह दूसरे

दर्जे की जो कान से गुज़रकर पेट में चली जावे, वह प्रथम श्रेणी की। अब गडरिया दरबार में पहुँचा। पुतलियां लाई गईं। गडरिये ने तीनों के कानों में सलाई डाली और तीनों के दर्जे बतलाये। यह उत्तर लिखकर राजा को भेज दिया गया। वहां से उत्तर आया कि आपके मन्त्री बड़े बुद्धिमान हैं। अतः राजा ने गडरिये को एक सोने का सिक्का और एक सेर जौ की भूसी इनाम दी। गडरिया इनाम लेकर रानी के पास पहुँचा कहा यह इनाम मिला है ? उसने सिर हिला दिया।

दूसरे दिन उसी राजा ने दो घोड़ियाँ दरबार में भेजीं जो कि रङ्ग-ढङ्ग तथा कद में एक समान थीं। पूछा गया इसमें कौन माता है? कौन बेटी ? अब मन्त्रिमंडल पैमाने से माप तोल करने लगे, पर दोनों एक जैसी पाईं। गडरिये ने सांयकाल को घर पहुँचकर रानी को यह समाचार सुनाया। तो रानी ने कहा कि कल तुम जाकर कहना इस प्रश्न का उत्तर कल मैं दूंगा। साथ ही यह कह आना कि घोड़ियों को रात दाना खिलाना, परन्तु इनको पानी न पिलाना। इतना कहकर गडरिया घर पहुँचा। तो रानी ने कहा कि तुम जाकर पानी की एक बाल्टी भरा कर रख देना। फिर दोनों घोड़ियों को इकठा पानी पीने को छोड़ देना तो माँ आकर पानी को सूंघेगी, बछड़ी को पहले पीने देगी फिर आप पीवेगी। जो पहले पीवेगी, वह बछड़ी और जो पश्चात् पीवेगी वह माता होगी। अब गडरिया दरबार में गया। पानी की बाल्टी भरवाकर रख दी फिर दोनो घोड़ियों को इकठा छोड़ दिया गया। एक घोड़ी पानी को सूँघकर खड़ी हो गई दूसरी पानी पीने लगी जब वह पी चुकी तो फिर दूसरी ने पानी पिया। अब गडरिये ने कहा-पहले पानी पीने वाली बछड़ी है। पश्चात पीने वाली माता है। अब यह उत्तर लिख कर भेजा गया। उत्तर आया, कि आपके राज्य के कर्मचारी बहुत बुद्धिमान हैं। राजा ने गडरिये को सोने का एक सिक्का और एक सेर जौ की भूसी तथा एक पाव आलू इनाम दिये। गडरिया रानी के पास लाया, रानी ने

सिर हिला दिया।

अब राजा ने गडरिये से पूछा कि यह बातें तुम्हें किस प्रकार ज्ञात हुईं। गडरिये ने कहा-मेरी बहिन ने मुझे बतलाई हैं। मुझे इन बातों का स्वयं ज्ञान नहीं था। गडरिये के इस उत्तर को सुनकर राजा कुपित हो गया और गडरिये को जेल में डाल दिया। तत्पश्चात् पूछा, तुम्हारी बहिन कहां है? गडरिये ने पता बतला दिया, अब राजा ने नौकर भेजकर उसे बुलवाया। रानी ने उत्तर दिया-"मैं नहीं आती बानिये का बेटा है, हम को बुलाता है"। तब एक मन्त्री को बुलाने के लिये भेजा। तो रानी ने इन्कार करते हुऐ कहा कि भडभूंजे का पुत्र है और हम को बुलवाता है। पुनः राजा ने मुख्यमन्त्री को बुलाने के लिये भेजा। तो रानी ने कहा मैं पड़दे में आ सकूंगी। पहले मार्ग में कनातें (पड़दे लगवाओ, अतः कनातें लगवाई गईं तब रानी गई, तो राजा ने प्रश्न किया कि आपको यह बातें कैसे ज्ञान हुई? रानी ने उत्तर दिया-कि जिस पुतली के कान में सलाई डालने पर दूसरे कान में निकल गई थी उसका तात्पर्य यह है-कि जो मनुष्य बात को सुनता है और फिर उसे दूसरे कान से निकाल देता है वह थर्डक्लास (अधम) है। और जो सुन कर सुनी हुई ही सुना देता है वह सैकण्ड (मध्यम) है। और जो सुनकर अपने अन्दर धारण कर लेता है वह फर्स्ट-क्लास (उत्तम) है।

२. "आपने घोड़ियों में माता-बेटी की पहचान कैसे की थी?" उत्तर दिया-"घोडी पहले पानी नहीं पिया करती जब तक बछड़ी को न पिला लेवे।"

३. आपने कहा-कि मैं भडभूंजे का बेटा हूँ। आपने यह कैसे जाना, रानी ने कहा, पहले आप अपनी माता जी से जाकर पूछ आओ कि आप भडभूंजे के बेटे हो या नहीं। राजा माता के पास गया और पूछा-"क्या मैं भडभूंजे का बेटा हूं"? माता ने उत्तर दिया-"तेरे पिता जी यहां नहीं थे मैंने भडभूजे का संग किया, उस विर्य से तू

उत्पन्न हुआ था।" राजा माता से पूछ कर वापस आया और कहा आपकी बात ठीक है। परन्तु आपको यह ज्ञान कैसे हुआ था कि मैं भड़भूंजे का बेटा हूँ।

४. साथ ही राजा ने फिर पूछा-"कि आपको यह कैसे ज्ञान हुआ कि मैं बनिये का बेटा हूँ।" रानी ने उत्तर दिया, "कि तुम ने गडरिये को जो इनाम दिये, बनिये के रूप में दिये, तुम्हारे इस न्याय को देखकर ही जाना। यदि तू राजा का बेटा होता तो सात ग्राम इनाम देता"। यह सुनकर राजा ने गडरिये को सात ग्राम पारितोषिक देकर बन्दीगृह (जेल) से मुक्तकर दिया।

अब रानी तथा गडरिये का अपना राज्य हो गया। रानी महल के ऊपर रहती और गडरिया नीचे। इस महल के साथ एक नदी बहती थी रानी ने ऊपर घूमते हुऐ देखा कि उसके पति देव मन्त्रिमंडल सहित इस नदी से गुजर रहे हैं। वह तुरंत नीचे उतरी-मन्त्रियां तथा कर्मचारियों को आदेश दिया कि इन्हें नदी से पार मत होनें दो। उस समय जोर की वर्षा हो रही थी। कर्मचारियों ने उन्हें नदी पार करने से रोक दिया। तब रानी का पति राजा (गडरिये) के पास आया और नदी पार करने की आज्ञा मांगी। रानी ने गडरिये की ओर संकेत करते हुऐ राजा से पूछा-"ये कौन हैं ? कहा-राजा हैं ? तब रानी अपने पति के चरणों में गिरकर नमस्कार करती हुई बोली "महाराज ! यह वही गडरिया है और में वही दासी हूँ। प्रिय सज्जनों यह है संगति करण तथा संस्कार का प्रभाव।

दृष्टान्त न ३:-एक लुटेरा जो बहुतों को लूट चुका था। लूटना उसने अपनी जीविका ही बना रक्खी थी। एक दिन अपने पुत्र से बोला-अब तुम सबल हो गए हो। मेरे इस लूटमार के कार्य में सहायता किया करो। आज मेरे साथ चलो घर में धन समाप्त हो चुका है। दिये का तेल तक भी नहीं रहा। पुत्र साथ चल पड़ा। एक धनी के घर के निकट पहुँचे तो

एक ओर छुप कर खड़े हो गये। पुत्र ने पूछा-अब लूटने में कितनी देर है? पिता ने कहा-पुत्र, अभी सेठ के घर दीपक जल रहा है। जब दिया बुझेगा तब हम अपना कार्य आरम्भ कर देंगे। पुत्र ने पूछा-पहले इस इस सेठ को कितनी बार लूटा है? पिता बोला-दस बार लूट चुका हूँ। तब पुत्र ने कहा-पिता जी! आपने जिस का दस बार धन हरा है उसके घर में अब भी दीप जल रहा है। परन्तु हम लुटेरों के घर अँधेरा ही है। और दीपक जलाने के लिये तेल भी नहीं रहा। यह क्या बात है? पुत्र की बात सुनकर पिता की आँखे खुल गईं। और बोला-तूने एक शब्द कह कर मेरी आँख खोल दी है। अब मेरे विचार बदल गऐ हैं। हम आज से लूटमार का काम बन्द करते हैं। मेहनत मज़दूरी करके रोटी कमाएंगे। सचमुच लूटने वालों के घर सदा अँधेरा ही रहता है। किसी ने सत्य ही कहा है:

खुल गया जिस पे राजे ए पिनहानी।
हेच समझे वो ऐश ए सुलतानी॥

प्रभु देव जब किसी पर दयालु होते हैं तो अनजान बालक से एक शब्द कहलवा कर ही उसका सुधार कर देते हैं।

दृष्टान्त ४—कहते हैं दो प्रेमी थे। कार्य भिन्न २ था। एक सत्संग किया करता था। दूसरा चोरी करता था। चोर नित्य प्रति-सत्संगी प्रेमी से कहता-"भाई साहब! आप को प्रति दिन सत्संग में जाने से क्या लाभ होता है। मुझे भी तो वह लाभ दिखावें. देखिये! मैं रात को चोरी करने गया पांच सौ रूपये ले आया। मेरी कमाई तो प्रत्यक्ष है।" सत्संगी प्रेमी ने कहा- मित्रवर! मुझे चोरी करना अच्छा नहीं जचता। सत्सग मुझे अधिक प्रिय लगता है। इसका लाभ ऐसी वस्तु नहीं जो आप को दिखलाई जा सके।" इसी प्रकार नित्य प्रति चोर-सत्संगी साथी से वार्तालाप करता रहता। अन्त में एक दिन चोर ने कहा-अच्छा मित्र!

आप चोरी न करें किन्तु मेरे साथ चला करें। मैं आपको आधा माल बाँट दिया करूँगा। बहुत लोभ लालच देकर उसे विचलित करने का यत्न किया, परन्तु वह न माना।

एक रात के समय जब चोर चोरी करने जा रहा था तो मार्ग में एक अठन्नी पड़ी हुई देखी, उसे उठाकर प्रसन्न हो गया और मन में कहा-कल दिन भर का खर्च तो मिल गया है। अब जाकर आराम करूँ फिर कल रात को चोरी करूँगा। यह निश्चय करके घर लौट कर सो गया, सत्संगी-जो रात को सत्संग करने गया तो जाते हुऐ मार्ग में पांव में कांटा लगा, पट्टी बांधी, घर आकर सोगया। प्रातः जब दोनों प्रेमी परस्पर मिले तो चोर ने कहा-भाई साहब! आपको सत्संग का फल मिल गया। भगवान ने लंगड़ा ही बना दिया। कई बार तुम को समझाया पर तुमने कहना न माना। आखिर प्रभु ने तुम्हें इस सत्संग का दंड दिया। देखा! मैं रात को चोरी करने गया, जाते हुए मार्ग में एक अठन्नी पड़ी मिल गई, उठा ली। विचार किया-कि कल की जीविका तो भगवान ने दे दी। अब चलो-आराम करें। घर में आकर सो गया। अब आप ही बताओ-परमात्मा मेरे काम से खुश हैं या आपके काम से।

बेचारा सत्संगी क्या उत्तर दे, किन्तु हृदय में ही विचार कर चोर से कहा-मित्रवर! किसी तपस्वी महात्मा के पास चल कर निर्णय करवायें कि सत्संग करना अच्छा है या चोरी। चोर ने कहा-क्या तुम पागल हो गऐ हो। तपस्वी, महात्मा चोरी करने को क्या जानें! वे तो पुस्तकें पढ़ना तथा सुनाना जानते हैं। चोरी के गुण तथा पहिचान तो चोर ही जानता है। इस पर सत्संगी ने कहा-मित्रवर! आपकी यह बात तो सत्य है। चोरी की कदर चोर ही जानता है। किन्तु दूसरे के पास चलकर यह तो निर्णय करें कि कौनसा काम अच्छा या बुरा है? तू चल तो सही। मानना न मानना तेरी इच्छा। निर्णय

करने वाला आपसे चिमट तो नहीं जाएगा । चोर मान गया । दोनों सन्तमहात्मा के पास गये अपना २ कार्यक्रम बतलाया । सुनकर संत-महात्मा ने उत्तर दिया । प्यारे ! बिना कर्मों के किये छुटकारा तो नहीं होगा । कहावत है-जैसी करनी, वैसी भरनी । जो बोता है, सो काटता है । भगवान किये हुऐ कर्मों का यथायोग्य फल देता है । वह सर्वद्रष्टा है । सर्वव्यापक है । न्यायाधीश है । वह माता पिता है । प्रत्येक प्राणी को चरार कुकर्मों (पापों) से भय भीत तथा सचेत करता है । सन्मार्ग दिखाता है । इतना कहकर चोर से कहा-प्यारो! यह बतलाओ कि जौ बोनें से क्या तुम्हें खेती गेहूँ उत्पन्न कर देगी। अथवा गेहूँ बोने पर क्या तुम्हें जो उत्पन्न कर देगी ? चोर वाला-महाराज ! यह तो सत्य है जैसा बोएगा-वैसा काटेगा । संतमहात्मा ! क्या जो लूटेगा या मारेगा वह लूटा अथवा मारा नहीं जाएगा । चोरः—बात आपकी खरी है । पर विश्वास नहीं आता । संतमहात्मा-पाप की कमाई का परिणाम् सुख-कारी नहीं होता भगवान के दरबार में देर है, पर अँधेर नहीं । सुनो-मैं तुम्हें पाप तथा पुण्य की कमाई का दृश्य दिखलाता हुँ ।

दृष्टान्त ५—एक ईश्वर विश्वासी संतमहात्मा थे । वे किसी से भीख नहीं मांगते थे । टोपी सीकर तथा बेचकर निर्वाह करते थे । एक टोपी का मूल्य केवल दो पैसे लेते । इन में से पहले जो याचक मिल जाता उसे एक पैसा दे देते ।बचे हुऐ एक पैसे से अपना पेट भर लेते । इसी प्रकार जब तक दो पैसे व्यय नहीं हो जाते थे तब तक वे नई टोपी नहीं सीते थे । भजन ही करते थे । इनका एक धनी भक्त था उसके पास धर्म खाते के लिये निकाली हुई रकम थी । उसने एक दिन पूछा-भगवन ! मैं यह धन किस को दान करूँ । महात्मा ने उत्तर दिया जिसे तुम सुपात्र समझो उसे ही दान दे दो । शिष्य ने जाते हुऐ मार्ग में एक प्रज्ञाचक्षु (अन्धे भिक्षुक को देखा और उसे सुपात्र समझ कर एक सोने की मोहर दे दी । दूसरे दिन उसी मार्ग से वह भक्त फिर गुजरा तो पहले दिन

वाला अन्धा-याचक एक दूसरे नेत्रहीन याचक से कह रहा था कि कल एक आदमी ने मुझ को एक सोने की मोहर दी थी मैंने उससे खूब शराब पी और रात को अमुक वेश्या के पास जाकर खूब आनन्द लूटा। भक्त को यह बात सुनकर बड़ा खेद हुआ और महात्मा जी की सेवा में पहुँचकर सारा समाचार सुनाया। महात्मा ने शिष्य के हाथ में एक पैसा देकर कहा-जाओ, मार्ग में जाते हुए जो भी पहले पहल तुम्हें मिले उसको यह पैसा देना यह पैसा टोपी सीकर कमाया हुआ था शिष्य महात्मा से पैसा लेकर चल पड़ा। मार्ग में एक मनुष्य मिला। भक्त ने उसको वह पैसा दे दिया और उस के पीछे २ चलना आरम्भ कर दिया वह मनुष्य एक निर्जन स्थान पर पहुँचा। उसने अपने वस्त्रों में छपाये हुए एक मृत पक्षी को निकाल कर फैंक दिया। इस पर भक्त ने उस मनुष्य से पूछा-कि तुमने मरे हुऐ पक्षी को कपड़ों में क्यों छुपाया हुआ था और अब उसे निकाल कर क्यों फैंक दिया। उस मनुष्य ने उत्तर दिया-आज सात दिन से मेरे कुटुम्ब को दाना-पानी तक नहीं मिला था भीख मांगना मुझे नहीं भाया। आज मार्ग में इस मृत पक्षी को देखा। मैंने विवश होकर अपनी और अपने परिवार की भूख मिटाने के लिये उठा लिया था अतः इसे लेकर घर जा रहा था। आपने मुझे विना मांगे ही पैसा दे दिया। इसलिये अब मुझे इस मृतपक्षी की आवश्यकता नहीं रही। इस कारण जहां से उठाया था वहीं आकर रख दिया है।

भक्त को उसकी बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और महात्मा के पास जाकर सारा वृतान्त सुनाया। महात्मा बोले-यह स्पष्ट है कि तुम ने दुराचारियों के साथ अन्याय पूर्वक धन कमाया होगा। ऐसी कमाई ही के धन का दान दुराचारी अन्धे को दिया और उसने उससे सुरापान तथा वेश्या संग किया। मेरे धर्मानुसार कमाये हुऐ पैसे ने एक कुटुम्ब को निषिद्ध आहार से बचा लिया। ऐसा होना स्वाभाविक था। अच्छा पैसा ही अच्छे काम में लगता है। कवि लिखता है:-

रहे न कौड़ी पाप की, ज्यों आवे त्यों जाए।
लाखन को धन पाय के, मरे न कफन पाए॥

———

दौलत वह अच्छी है और माल है अच्छा।
जिस से हो मुश्किल किसी मोहताज की आसान॥

———

मोहताज को देगा तो तुझे देगा प्रभु और।
हकदार को हक बक्श तो सोख्ते यजदान (परमात्मा)॥

सन्त महात्मा ने कहा और बात सुनो। सावधान होकर। एक कथा है।

कथा—स्वर्ग के देवदूतों ने भगवान से एक दिन प्रश्न किया प्रभु क्या संसार में ऐसो भी कोई वस्तु है जो चट्टानों से अधिक कठोर हो। भगवान ने उत्तर दिया-चट्टानों से अधिक कठोर है लोहा, क्योंकि यह उन्हें तोड़ डालता है।

प्रश्नः—और क्या ऐसी भी कोई वस्तु है जो लोहे से भी अधिक कठोर या मजबूत हो?

उत्तरः—हाँ अग्नि। यह लोहे को पिघला देती है।

प्रश्नः—क्या अग्नि से भी कोई वस्तु कठोर है?

उत्तरः—पानी-जो अग्नि को बुझा देता है।

प्रश्नः—क्या पानी से भी कोई वस्तु कठोर है?

उत्तरः—वायु-जो जल के प्रवाह को तरंग के रूप में परिणत कर डालता है। उसके जन्न दाता मेघों को भी जब चाहे एकत्र वा तितर-वितर कर देता है।

प्रश्नः—क्या कोई और वस्तु भी है जो इनकी अपेक्षा भी अधिक हो?

उत्तरः—हाँ-हाँ वह दयालु हृदय जो इतनी गुप्त रीति से दान देता है। इतना छिपाकर देता है कि जिसका बायां हाथ भी नहीं जान पाता, कि दाहिना हाथ क्या करता है। वह इस वायु की अपेक्षा भी बलवन्तर है। सब से महान है।

तन पवित्र सेवा करे- धन पवित्र किये दान।
मन पवित्र प्रभु भजन में-होत त्रिविध कल्याण॥

अब सन्त महात्मा ने चोर से कहा-प्यारे! आप के पूर्व कर्म इतने अच्छे थे कि तू इस जन्म में धन का धनी ही था परन्तु तूने ऐसा हीरा जन्म पाकर मन्द कर्म करने आरम्भ कर दिये हैं। इन मन्द कर्मों के कारणों के कारण आप की पूर्व कमाई का धन समाप्त होगया है। यह जो अठन्नी आपको रात्री को मिली यह अन्तम थी। अब चोरी करने जाएँगा तो बस जेल यात्रा होगी। इस बात का विश्वास दिलाने के लिये आप उस स्थान पर- जहां तुम्हें अठन्नी मिली थी जाकर खोदो। धन के ढ़ेर थे। जो तेरी पूर्व कमाई का फल था। क्योंकि तुम ने इस जन्म में,पाप कर्म किये हैं इसलिये तेरा सारा धन अब राख का टीला हुआपड़ है। उसे खोद कर देखा-तो कोयले और राख ही थी। अब सत्संगी प्रेमी से कहा- प्यारे! तेरे पूर्व कर्म ऐसे मन्द थे कि तू इस जन्म में फ़ांसी पर लटकाया जाता,परन्तु तूने यहां आकर सत्संग किया। शुभकर्म पवित्र कमाई की,इस लिये फाँसी की बजाय तुझे (सूली) कांटा ही फल में मिला है। तुम जाकर उसी स्थान को खोदो जहां पर तुमको कांटा लगा था। देखा तो वहां फाँसी बनी हुई थी।

अब दोनों ने संत महात्मा के उपदेश को सुना-और-अपने२ स्थान को खोदा-जैसा संत महात्मा ने कहा, वैसा पाया। तब चोर सदा के लिये शुद्ध-पवित्र हो गया दोनों। परस्पर प्रेम-प्रीती से शुभ कर्मों में लव- लीन हो गए। कवि लिखता है:—

पड़ कुसंग में देखिये-निर्मल पर भी मार।

पावक लोहे में मिले-पीटत ताऐ लोहार ॥

———

मनुष्य जन्म् दुर्लभ है, दुर्लभ मनुष्य शरीर ।
भक्ति भाव हृदय में धरो, सो नर धीर गम्भीर ॥
कबीर कबीर तुम क्या करो, शोधो मनुष्य शरीर ।
पांचों को जो वश करे—वही दास कबीर ॥

———

तन की जाने मनकी जाने-जाने, चित्त की चोरी ।
वह साहब से क्या छुपावे, जिन के हाथ में डोरी ॥

———

साधु संगति हरि कीर्तन, सर कर मन के कर्मा ।
कहो नानक तिस भयो प्रापत-जिस पूर्व लिखे का लहना ॥

—=—

अहङ्कार (दिखावे की भक्ति का फल)

दृष्टान्त—एक मुसलमान फकीर जिस का नाम हाजी मुहम्मद था। वह साठ बार मक्का शरीफ हज कर आये थे और नित्य प्रति नमाज पढ़ा करते थे। एक दिन हाजी मुहम्मद ने स्वपन में क्या देखा-कि स्वर्ग दूत हाथ में बेत लिये स्वर्ग तथा नरक के बीच खड़ा है। जो भी यात्री आता है, उसके भले-बुरे कर्मों का नरीक्षण कर यथा योग्य स्वर्ग अथवा नरक में भेज रहा है, हाजी मुहम्मद उसके सम्मुख आये-तो कहा कि तुम किस सत्कार्य के फलस्वरूप स्वर्ग में जाना चाहते हो ? उत्तर में हाजी मुहम्मद ने कहा कि मैंने साठ बार हाज किया है। स्वर्गदूत बोला यह तो सत्य है परन्तु तुम गर्व के साथ उत्तर देते हो कि मैं हाजी मुह-

म्मद हूँ । इसी गर्व के कारण तुम्हारा साठ बार हज करने का पुण्य नष्ट हो गया । और कोई पुण्य किया है तो बताओ । हाजी मुहम्मद ने कहा प्रति दिन पांच बार नमाज़ पढ़ता हूँ । उत्तर मिला तुम्हारा यह पुण्य भी समाप्त हो चुका है । हाजी मुहम्मद ने पूछा वह कैसे ? मेरे किस अपराध से यह पुण्य नष्ट हुआ है । स्वर्गदूत ने उत्तर दिया-एक दिन बाहर बहुत से धर्म-जिज्ञासु तुम्हारे पास आये थे । उस दिन तुमने उनके सामने-उन लोगों को दिखलाने के लिये अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक देर तक नमाज़ पड़ी थी । इस लोक दिखावे के भाव से तुम्हारा साठ वष की नमाज़-तपस्या नष्ट हो गई ।

स्वर्गदूत की यह बात सुनते ही हाजी मुहम्मद ज़ोर से रो पड़ा। चिल्लाने की आवाज़ कानोंमें पड़ते ही उसकी नींद टूट गई । जागने पर भी स्वप्न की बात का स्मरण करके वह भय से काँपते हुऐ वह कराहते रहे । उसे अपनी भूल मालूम हो गई और उसी दिन से उसका गर्व दूर हो गया । वह दीन बन गये । परमात्मा ने स्वपन में सावधन करके उस पर बड़ी कृपा की ।

प्रश्नोत्तर

सन्त-संग

राग क्या है ।—दोश मालूम होते हुऐ भी त्याग न करना राग है ।

द्वेश क्या है ।—गुण ज्ञान होते हुऐ भी, ग्रहण न करना द्वेष है । (राग त्याग नहीं होने देता और द्वेष प्रेम नहीं होने देता । क्योंकि त्याग तथा प्रेम से राग द्वेष मिट जाते हैं ।)

बुराई कैसे होती है:—ऐसी कोई बुराई नहीं जिसका जन्म् राग या द्वेष से न हो । अर्थात सभी बुराईयां राग द्वेष से होती हैं ।

प्रेम न्याय का भेद:—न्याय राजा है। प्रेम साधु है। (राजा प्रजा पर शासन करता है। साधु राजा पर।

सुख और आनन्द में क्या भेद है। } सुख से दुःख दब जाता है। आनन्द से मिट जाता है। (दबा हुआ दुःख फिर उत्पन्न हो जाता है परन्तु मिट जाने पर फिर उत्पन्न नहीं होता।)

मन का निग्रह किस प्रकार हो सकता है:-सार्थक काम को पूरा करने तथा निरर्थक कर्म के त्याग से मन का निग्रह अपने आप हो जाता है। क्योंकि काम को मन में जमा नहीं रखना चाहिए अर्थात काम न रहने से मन का निग्रह अपने आप हो जाता है।

सार्थक कर्म क्या है:-जिसके बिना कर्ता किसी प्रकार न रह सके तथा जिस काम के करने के साधन प्राप्त हों और जिस के करने से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति हो वही सार्थक कर्म है।

निरर्थक कर्म क्या है:—जो काम वर्तमान में न हो। अर्थात आगे पीछे का व्यर्थ चिन्तन करना। तथा जिन कर्मों से शारीरिक, मानसिक व आत्मिकोन्नति न हो। वह निरर्थक कर्म है।

मृत्यु क्या है:-मृत्यु के ज्ञानार्थ जीवन ज्ञान कर लेना आवश्यक है। जीवन इच्छाओं की पूर्ति के लिए मिला है। यह सभी जानते हैं। यदि सभी इच्छाओं की पूर्ति हो गई तब जीवन की आवश्यकता नहीं होती। फिर मृत्यु की आवश्यकता भी नहीं होती। जीवन की आवश्यकता न रहने पर देहान्त होता है। मृत्यु नहीं। क्योंकि मृत्यु जीवन के लिए होती है अर्थात जो इच्छायें शेष रह जाती हैं उनकी पूर्ति के लिए मृत्यु एक अवस्था है। अन्य कोई वस्तु नहीं है। जिस प्रकार थके हुए प्राणी को थकावट दूर करने के लिए नींद आवश्यक है उसी प्रकार इच्छाओं के शेष रखने वाले प्राणी के लिये मृत्यु आवश्यक है। जीवन के लिये नहीं।

हम को मृत्यु के साथ क्या करना चाहिए:—मृतक के साथ सब से

बड़ा कर्तव्य यही है कि उससे अपना सम्बन्ध तोड़ देना चाहिए। और सद्भाव पूर्वक हृदय से मूक प्रार्थना करनी चाहिये, कि उस प्राणी का कल्याण हो। क्योंकि जब प्राणी स्थूल शरीर छोड़ कर अपने शुभाशुभ कर्मानुसार की हुई इच्छा पूर्ति के लिये योनि धारण करता है तब आप उसके साथ सम्बन्ध रखेंगे तो उसको योनि धारण करने में देर अवश्य होगी। इसलिए शीघ्रातिशीघ्र सम्बन्ध विच्छेद कर देना चाहिए।

साधन से सफलता क्यों नहीं होती:—जिस प्रकार बिना प्राण के शरीर कितना ही सुन्दर क्यों न हो किन्तु बेकार होता है। इसी प्रकार व्याकुलता (लग्न) रहित साधन कितना ही उत्तम क्यों न हो किन्तु बेकार हो जाता है। साधन में सफलता न होने का कारण केवल यही है कि कर्ता जिस लिये साधन करता है उसके लिये पूर्ण लग्न नहीं होती। अर्थात यदि ऐसी लग्न हो कि उसके बिना न रह सकें तो अवश्य सफल हो जायें।

सब से बड़ा दुःख कब होता है:—सब से बड़ा दुःख मनुष्य को तब होता है जब अपनी दृष्टि में अपने आप को आदर के योग्य नहीं पाता। अर्थात अपने में न्यूनता का अनुभव करता है।

सब से बड़ा सुख क्या होता है:—सबसे बड़ा सुख मनुष्य को तब होता है जब वह अपनी दृष्टि में अपने भीतर किसी प्रकार की कमी नहीं अनुभव करता।

मन में शांति कैसे हो:—सुख से दुःख दबता है। आनंद से मिट जाता है। यह पहले बतलाया गया है। आनन्द इच्छाओं की निवृत्ति होने पर, तथा सुख इच्छाओं की पूर्ति होने पर होता है। इच्छाओं की पूर्ति के लिए परतंत्रता है क्योंकि इसके लिये सहयोग की आवश्यकता होती है। परन्तु इच्छाओं की निवृत्ति के लिये स्वतन्त्रता है। क्योंकि यह निवृत्ति त्याग से होती है। मन के इधर उधर जाने का कारण राग-द्वेष है। जिससे द्वेष है उससे प्रेम करो। जिससे राग है उसका त्याग

करो। ऐसा करने से मन शांत हो जायेगा।

साधक को कैसा भोजन करना चाहियेः—तनिक विचारो और देखो, भोजन किस लिये किया जाता है:-भूख का दुःख न हो तथा प्राण अथवा जीवन शक्ति काम करती रहे, इस लिये भोजन किया जाता है। विवेकी पुरुष तो भोजन नहीं करता, परन्तु प्राण भगवान को आहुति देता है। आहुति ऐसी वस्तु की देनी चाहिये जिससे जीवन शक्ति दैवी स्वभाव की हो, अर्थात आसुरी स्वभाव न आने पावे। भोजन का शारीरिक स्वभाव से अभेद्य सम्बन्ध है। भोजन की सामग्री सात्विक हो। सात्विक का यह अर्थ नहीं कि केवल फल दुग्धादि हों। परन्तु साधारण रोटी-दाल-साग-भात आदि हो। अधिक काल का बना हुआ न हो, और पचने में भी सुगम हो, तथा प्राणों को अधिक काल तक शक्ति भी दे सके। भोज्य पदार्थों के प्राप्त करने के लिये धन भी सात्विक हो। अर्थात न्याय पूर्वक उपार्जित हो। भोजन बनाने वाला भी सात्विक स्वभाव का हो अथवा परिवार सम्बन्धी हो। कुछ महानुभाव जिनसे भोजन बनवाते हैं। उनको (नौकर आदि) अपने जैसा भोजन नहीं देते अतः भोजन बनाने वाले के मन में भोजन-भक्षण करने की लालसा बनी रहती है, मिलता है नहीं। अतः भोजन में मानसिक दोष आ जाते हैं। और ऐसा भोजन करने से मानसिक अवनति आ जाती है। नौकर से भोजन उन को बनवाना चाहिए जो अपने समान उसे भी खिला सकें ताकि भोजन में मानसिक अपवित्रता न आने पावे। भोजन बनाने के लिए वही उचित होता है कि जिसका हृदय माता के समान विशाल हो।

समझदार मनुष्य-बालक-पशु सब अन्न भोजन करते हैं। पशु में देह और प्राण जागृत होते हैं। शेष तीन कोष सुप्त रहते हैं। अतः वह जो खाद्य पदार्थ खाता है उसका आनन्द रस अनुभव नहीं करता। मिट्टी से लतपथ हो, गन्दा पानी हो, उसे ज्ञान नहीं होता। दुर्गन्ध हो

या सुगन्ध-उसे घृणा अथवा प्रेम नहीं होता । ऐसी ही अनजान बालक की अवस्था है । परन्तु जब भद्र पुरुष के सामने ऐसा भोजन आता है जो उसे देख कर अप्रसन्नता तथा घृणा होती है । मिट्टी में मिला हो या उसमें बाल देखले तो ग्रहण नहीं करता । दुर्गन्ध आये तो नाक भौं चढ़ाता है । जब मनुष्य भोजन करता है तो उसका भोजन अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-ज्ञानमय-आनन्दमय कोष तक पहुँचता है । साधारण व्यावहारिक समझदार मनुष्य के लिये तो भोजन का इन सब कोषों में बाह्य स्थूल भाग पहुँचता है, परन्तु साधक-प्रभुदर्शन-आत्मदर्शन करने के लिये जिसका भोजन होता है वह जड़वत नहीं खाता । स्वभाव रूप से नहीं खाता । वह तो चेतन हो कर खाता है और किसी संकल्प तथा उद्देश्य से खाता है । वह पांचों कोषों में बाह्य स्थूल के अतिरिक्त आंतरिक सूक्ष्म भाग को भी प्राप्त करता है । अन्न में सब रस हैं परन्तु साधक की आत्मा का अन्न तो प्रभु आप ही है । वेद में प्रभु ने कहा है:—

"अहमन्नम अहमन्नम" मैं अन्न हूँ । मैं अन्न हूँ । वह आप जो अन्न हैं किसका ? जो इस अन्न की तालाश में है । अन्न का अर्थ जो खाया जावे और जो खा जाये । साधक को क्या प्राप्त होता है ? भोजन से उस स्थूल अन्न जल का बना हुआ वह तो अन्नमय कोष और और प्राणमय कोष में पुष्ट और तृप्त करता है । और सूक्ष्म भाग वायु प्रकाश मनोमय कोष मेंचेतनता अर्थातश ान्ति समाहितपन और ज्ञान मय कोष में जो इस पदार्थ में जो गुण हैं वह ज्ञान को, और भोजन के देखने से जो प्रसन्नता थी, वह बाह्य रूप से आनन्दमय कोष को तृप्त करती है । किन्तु खाने से जो आनन्द रस आ रहा है । बार २ चबाने पर और क्षण २ प्रसन्न हो रहा है वह रसानन्द तो प्रकृति में है नहीं । **"रसो वै स"**साधक इस आनन्द में आनन्द स्वरूप ब्रह्मानन्द

सरस को सचमुच चेतनता से अनुभव करता और गद गद होकर वही अन्न खा रहा होता है । जो वेद ने कहा है—"अहमन्नमन्नम" अब यह रस आनन्दमय कोष के आंतरिक खजाने को भर रहा होता है। जैसे अन्न शरीर में जाकर शरीर बन जाता है और उसमें कोई भेद नहीं रहता। ऐसे हीं उपासक भक्त की आत्मा इस आनन्द रस को पाकर तथा पी कर एक हो जाती है। आत्मा और परमात्मा आनन्द में कोई भेद नहीं रहता। अत्र ब्रह्म क्या खाता है? भक्त आत्मा के अहंकार को खा रहा होता है। भक्त तो खाते हुए भगवान के भगवद् अमृतानन्द रस में एक हो रहा होता है। उस का अहंकार उस समय प्रभु खा रहे होते हैं। उसे इस रस के सिवाय कुछ ज्ञान नहीं रहता । भोजन में भी समाहित हो रहा होता है। साधारण मनुष्य खाते समय अहङ्कार वृत्ति के कारण नाना प्रकार के विचार मन में उत्पन्न करता रहता है। इस लिए इसे मन की चेतनता भी शांत और समाहित नहीं करती, और ज्ञान भी पदार्थ के गुणों को ग्रहण नहीं कर रहा होता। क्योंकि बाह्य क्रियाएं बाह्य अंगों में हो रही होती है। वस्तुतः भक्त का भोजन हीभजन है।

पाठक गण ! टोबा टेक सिंह जिला लायलपुर में पूज्यपाद गुरू देव महात्मा प्रभु आश्रित स्वामी जो महाराज को एक मुसिलमान ने साधनाश्रम बनवा दिया। वहां पर पहले वर्ष ही चारों वेदों तथा दस लाख सावित्री गायत्री द्वारा आहुति देने को यज्ञ रचाया गया—साथ ही एक करोड़ गायत्री का जाप पूर्ण करने की प्रेरणा हुई अठारह व्रती सम्मिलित हुए। नियम यह था—प्रातः। तीन बजे जागरण, पांच बजे तक शौच-स्नान-सन्ध्या गायत्री जाप इत्यादि, पांच से आठ तक बृहद्‌यज्ञ तथा उपदेशान्तर प्रातः कालीन कार्यक्रम समाप्त हो जाता। श्रोता गण, प्रेमी माई-भाई सब अपने घरों को चले जाते। आश्रम द्वार बन्द कर दिये जाते, तथा दिन भर मौन रह कर साधना करते। भोजन का अन्न शुद्ध पवित्र तथा धर्मानुसार कमाये हुए धन

का आता। उसे गायत्री जाप में पवित्रता से पीसा जाता। मौन-गायत्री जाप से भोजन बनाया जाता और मौन रहकर खाया जाता। इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाता कि कोई दूषित अन्न भण्डार में न आ जाये। साधकों के अतिरिक्त कोई नगर अथवा बाहर से आया हुआ व्यक्ति प्रेमी आश्रम में निवास नहीं कर सकता था। ताकि साधना में बाधा न हो परिणामतः जो साधक इस धर्म साधना करने में सफलता प्राप्त कर गये वे आज तक साधनाश्रम की मुक्तकण्ठ से महिमा गाते हैं। कारण:—वहां कथनी तथा करनी एक रूप थी। वेद में एक मन्त्र आता है जो अन्न के विषय में आदेश करता है:—

ओ३म् यज्जा यथास्तद् हरस्य कामेंऽशो पीयूषमपिब्रोगिरिष्ठाम्। तं ते माता परियोषा जनित्री मह पितुर्दम असिंचदग्रे॥

ऋ० मं० ३ सू० ४८ मं० २

अर्थात:—जब स्त्री और पुरुष गर्भाधान करें तब दूषित अन्नपानादि का सेवन त्याग कर श्रेष्ठ शुद्ध अन्नपान का सेवन करें और सन्तान उत्पन्न करके फिर उसका भी इसी प्रकार पालन तथा संवर्धन करें। ताकि वे राजा होने के योग्य हो।

पाठकगण वेद ने बतलाया कि सन्तानोत्पत्ति से पूर्व शुद्ध-पवित्र अन्न सेवन करनापति पत्नी के लिये परमावश्यक है। यदि वेदादेशानुसार गृहस्थी आचरण करें तो फिर संसार में दुःसन्तान कैसे उप्पन्न हो? श्री स्वामी सिया राम जी महाराज योगी थे। वह एक स्थान पर ठहरे। प्रेमी शरण में बैठे थे। श्री स्वामी जी महाराज ने प्रेमियों से कहा कि सामने रोशनदान से सूर्य की किरणें आती हैं, इस रोशनदान पर कपड़े का टुकड़ा लगा दिया जाय,इतना कह कर स्वामी जी भ्रमणार्थ चले गये। पीछे एक प्रेमी ने आ कर रोशनदान पर कपड़ा लगा दिया। जब स्वामी जी महाराज सैर से लौट कर कमरे में पधारे, तो रोशनदान

पर लगे हुए वस्त्र को देखकर तुरन्त कहा—यह वस्त्र किसने लगाया है इसे शीघ्र उतारो। सेवक ने कहा—महाराज ! आपकी आज्ञानुसार एक प्रेमी इसे लगा गया है। सूर्य की रशमीयां रुक गईं फिर क्यों उतरवाते हैं ? श्री स्वामी जी महाराज ने कहा इस वस्त्र से रक्त की गन्ध आ रही है। पता किया गया, कि वस्त्र कौन लगा गया है ? मालूम करने पर ज्ञात हुआ कि एक वकील लगा गया था। उसे बुला कर पूछा गया-यह वस्त्र कहां से लाये हो। वकील ने कहा—महाराज ! बाज़ार से मोल लाया हूँ। इस पर प्रश्न किया कि वह दाम कैसे थे। वकील ने कहा—महाराज ! एक ज़मींदार ने एक आदमी का वध कर दिया था। उसने मुझे इस अभियोग के सम्बन्ध में रुपया दिया था। इसी रूपये से कपड़ा लाया था। स्वामी जी ने कहा—इसलिये तो मैंने आते हुए कपड़े को देखा तो रक्त की गन्ध आने लगी तब मैंने इसे उतरवा दिया। सज्जनो यह है अशुद्ध कमाई का परिणाम। और शुद्ध अन्तःकरण का स्वरूप।

अन्तःकरण की शुद्धि। जिस प्रकार वस्त्र में बाह्य वस्तुओं का मिल जाना वस्त्र की मलीनता कहलती है। और इन वस्तुओं का जो वस्त्र की जाति से भिन्न हैं निकल जाना ही वस्त्र की शुद्धि कहलाती है। इसी प्रकार अन्तः-करण में विषय आदि स्वभाव का प्रभाव हो जाना ही 'अन्तःकरण की मलीनता है। और विषय आदि का प्रभाव अन्तःकरण से निकल जाना ही अन्तःकरण की शुद्धता हो जाने पर अन्तःकरण की प्रवृत्ति स्वाभाविक हो जाती है। स्वाभाविक प्रवृत्ति होने पर प्रवृत्तिकाल से भिन्न अन्तः-करण स्वयं अपने कारण में विलीन हो जाता है। अर्थात निर्विकल्प स्थिति की अनुभूति होती है।

निर्विकल्प स्थिति शुद्धान्तकरण की स्वाभाविक अवस्था है। इन्द्रियों की क्रिया का प्रभाव क्रिया के अतिरिक्त और कुछ रास्ता नही रखता अर्थात इन्द्रियों की चेष्टा निर्जीव मशीन की भान्ति होती रहती है।

जिस प्रकार बाह्येन्द्रियां चेष्टा रहित अवस्था में अन्तःकरण में विलीन हो जाती हैं उसी प्रकार अन्तेन्द्रियां चेष्टा शून्य होने पर निर्विकल्प स्थिति में विलीन हो जाती हैं। यही अन्तःकरण की शुद्धि है।

अन्तःकरण की शुद्धता का फलः—अन्तःकरण शुद्ध होने पर पूर्ण सत्य की जिज्ञासा जागृत होतीं है और पुनः सत्य की कृपा से स्वयं सत्य का अनुभव हो जाता है। सत्य का अनुभव करने के लिए अथवा यूँ कहो कि जीवन की पूर्णता के लिये अन्तःकरण की शुद्धता अनिवार्य है।

किसी को सुख क्यों देना चाहियेः—यदि किसी से सुख लिया है तो तुम उसके ऋणी हो जिसने सुख दिया है, उसने सुख देना सिखलाया है। सुख दाता को तो तुम सुख दे नहीं सकते अतः दूसरों (दुखियों) को सुख देना भी अनिवार्य है तथा। सुख दाता के ऋण से मुक्त हो जाना है।

ईश्वर या गुरु को सुख कैसे दें:—इनसे अभिन्न होना ही इनकी सेवा है। अथवा उनके नाम पर दुखियों की सेवा करना इनकी सेवा है। वास्तव में तो गुरूतत्व अथवा ईश्वर तत्व सर्वथा पूर्ण हैं। उनके शरणापन्न हो जाना अर्थात अपने आप को खो देना ही उनकी सेवा है। गुरू के दिये हुये गुर को जीवन का स्वरूप बना लेना परम गुरु भक्ति है। गुरू के बताये हुये लक्ष्य से भ्रष्ट न होना ही गुरू दक्षिणा है

हम सब साधारण मनुष्यों के लिए भगवद प्राप्ति का सुगम उपाय क्या हैः-जिस प्रकार भोगाभिलाषी पूजा पाठ करते हुए भी उसी पूजा का अर्थ भोग प्राप्ति रखता है। क्योंकि उसकी निष्ठा भोग में होती है और क्रिया पूजा की होती है, इस प्रकार भगवद प्राप्ति के इच्छुक के लिये सारी आवश्यक क्रिया को करते २ यदि उसकी निष्ठा भगवद प्राप्ति में हो तो फिर अनेक क्रियाओं का एक ही अर्थ हो जायेगा। सभी क्रियाएं भगवद प्राप्ति के भाव में विलीन हो जाएंगी। भाव की

पूर्णता होने पर भाव ज्ञान में विलीन हो जाएगा। अर्थात भगवद प्राप्ति हो जाएगी अतः जीवन में एक निष्ठा हो जानी चाहिए।

प्रार्थना में सफलता क्यों नहीं होती:—हृदय से देखो, कि क्या प्रार्थना कर्ता महानुभाव प्रार्थना तब करते हैं जब करनी चाहिए। यदि प्रार्थना सफल नहीं हुई तो इसका कारण यही है कि पार्थना कर्ता अनाधिकार चेष्टा करते हैं। प्रार्थना करने का अधिकार तब होता है जब कर्ता अपनी सारी शक्ति समाप्त कर देवे, क्योंकि शक्ति के रहते हुए सच्ची प्रार्थना नहीं होती है। प्रार्थना वास्तव में दुःखी हृदय की पुकार है। दुःखी की पुकार सुनकर दुःख हर्ता अवश्य दुःख हर लेते हैं। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। किन्तु होता यह है कि प्रार्थना कर्ता मस्तिष्क से प्रार्थना करते हैं और हृदय में सन्देह रखते हैं।(अर्थात प्रार्थना जब सफल हो जावेगी तब दुःखहर्ता की सता स्वीकार करेंगे अथवा यों कहो कि उनकी सर्व सामर्थ्यता पर सद्भाव तथा श्रद्धा नहीं) ऐसे प्रार्थी प्रार्थना नहीं कर पाते। यदि उनकी सर्व सामर्थ्यता पर श्रद्धा होती तो क्या प्रार्थना वाणी तथा मस्तिष्क से ही करनी पड़ती? क्या उनको प्रार्थना की रुचि का ज्ञान नहीं है? यदि है तो प्रार्थना को वाणी से क्या लाभ? अथवा चिन्तन करने से क्या लाभ। प्रार्थी के बार २ चिंतन करने का अर्थ यही हो जाता है कि या तो प्रार्थी अपने को बचाकर प्रार्थना करता रहता रहा है अथवा अपने इष्ट देव की सर्व सामर्थ्यता पर श्रद्धा नहीं करता। जो प्रार्थी अपनी पूर्ण शक्ति समाप्त कर सर्वसामर्थ्यवान इष्ट देव से प्रार्थना करता है उसकी प्रार्थना अवश्य सफल होती है।

प्रार्थना की नहीं जाती परन्तु स्वयं होती है। क्योंकि जो अभिलाषा मिटाई नहीं जाती और जिसके पूर्ण करने की शक्ति नहीं है तब जो पुकार हृदय से उत्पन्न होती है वही प्रार्थना है। ऐसी प्रार्थना एक बार उदय हो कर इष्ट में विलीन हो जाती है। अर्थात प्रार्थना प्रार्थी

का स्वरूप हो जाती है। अथवा यूँ कहो कि प्रार्थी सर्वसामर्थ्यवान इष्ट देव में विलीन हो जाता है। यही वास्तविक प्रार्थना का वास्तविक स्वरूप है जो होने पर अवश्य सफल होती है।

उत्तम साधन:—रोना ही सर्वोत्तम साधन है क्योंकि आँसुओं की धार में माना हुआ अहंभाव बह जाता है।

ओ३म् यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
यान्ति शुभ्रारिणन्नप ॥ ऋ० म० ८ सू० १ म० २८

भावार्थ:—जब भगवान की ओर मन जाता है तब नयनों से करुणारस निकलते हैं। नोट:—रोना सर्वोत्तम साधन इस लिए है कि प्रत्येक साधन करने में सर्वथा स्वतन्त्र है। रोने की पूर्णता सभी दोषों को मिटाने में समर्थ है। जो रोना दोषनिवृत्ति किये बिना जाय, वह वास्तव में रोना नहीं है। रोना उसी प्राणी को आता है जो अपना मूल्य संसार से अधिक कर लेता है। क्योंकि बिना असहाय रोना नहीं आता। पूर्णतत्व के अतिरिक्त सभी रोते हैं। विचारशील में विचार-प्रेमी में प्रेम-योगी में योग। शक्ति हीन में-शकित-निर्बल में बल प्रदान करने में रोना ही समर्थ है।

मन क्या है:—वासनाओं के समोह का नाम मन है। सारी वासनाओं का अन्त करने पर मन मिट जाता है। और फिर काम-क्रोध-मोहादि विकार शेष नहीं रहते, वासनाओं का अंत यथार्थ ज्ञान से होता है। ज्ञान हृदय शुद्धि से होता है। हृदय-त्याग और प्रेम से शुद्ध होता है। शरीरादि किसी वस्तु को अपना न समझना त्याग है। और आनंदघन भगवान से किसी प्रकार की दूरी न रहना 'प्रेम' है। प्रेम त्याग होने पर अपने आप आ जाता है।

भगवत्प्रेम प्राप्ति का स्वरूप:-एक देवी का पति बाहर गया हुआ था। चिर कालांतर उसके वापस आने की सूचना देवी को मिली। वह उस नियत तिथि को घर से दीवानी मस्तानी बन कर पति दर्शन तथा आदर-सत्कारार्थ स्वागत करने के लिए भागती हुई गई। मार्ग में

एक मौलवी नमाज़ पढ़ रहा था। देवी उसके आसन पर पांव रखती हुई आगे निकल गई जाकर पतिदेव के दर्शन किये और सत्कार किया। जब वह वापस लौटी तो उस मौलवी ने देवी से पूछा. कि तुम मेरे आसन पर पांव रख कर क्यों चली गई थीं? देवी ने उत्तर दिया। मैं पतिदेव के प्रेमवश उनके दर्शनार्थ जा रही थी। उस समय मुझे यह दिखलाई ही नहीं पड़ा कि आप नमाज़ पढ़ रहे हैं। या मेरा पांव आप के आसन पर पड़ा है। और मौलवी साहब से प्रश्न किया—कि क्या आप ऐसी ही नमाज़-सन्ध्या या भक्ति कर रहे थे जो आप अपने आसन की ही धुन में थे। सच कहा है:—

प्रेम गली अति सांकरी-जां में दो न समाय।

एक और कवि लिखता है:—

खूब देखा खूब ढूंन्डा, कुछ नज़र आया नहीं।
आज तक अपने में हमने, आप को पाया नहीं॥
चश्मे ज़ाहर में से तो, देखा नहीं जाता है यार।
तुम ने भी आ दिल की आंखों, उसको दिखलाया नहीं॥
हो मुयस्सर क्योंकर उस, परदा नशीं का देखना।
है जो परदा दर्म्यान, वह उसने उठवाया नहीं॥

हम कैसे जानें कि ईश्वर है—क्या आप ने ईश्वर को जानने के लिए जो कुछ आप कर सकते थे वेकर लिया है। यदि नहीं किया तो कर डालो। क्या आप ईश्वर को किसी और की सहायता से जान सके हो? यदि नहीं जान सके तो दूसरों की सहायता लेना छोड़ दो। जब आप दूसरों की सहायता लेना छोड़ दोगे अथवा जो कर सकते हो कर

डालोगे या ईश्वर की ही मरज़ी पर छोड़ दोगे, तब "ईश्वर है" यह स्वयं अनुभव हो जायेगा।

शरणागत किस के होना चाहिये=जोस्वतन्त्र हो,नित्य हो, अखण्ड हो अनन्त हो, सर्वथा परिपूर्ण हो,अनन्त ज्ञानमय हो अर्थात जिस में किसी प्रकार की कमी न हो, उसकी शरण में जाना चाहिये।

शरणागत किस लिये होना चाहिये=जिस की शरण में जाना हो, उससे अभेद होने के लिये शरणागत होना चाहिये।

शरणागत हो जाने का स्वरूप क्या है=शरणागत होनेवाला (कर्ता तथा भोक्ता) शब्द-स्पर्श-रूप रस-गन्ध आदि विषयों का त्याग कर परमतत्व सच्चिदानन्द की शरण हो कर उससे अभेद हो जाता है। अर्थात द्रष्टा-दर्शन दृष्य तृप्ति का अभाव हो जाता है। यह शरणागत का स्वरूप है। जिस प्रकार पानी का बहाव रोक देने पर-जहां से पानी निकलता है अपने आप चढ़ जाता है। इसी प्रकार दोषों का त्याग करते ही विषयों का भोक्ता अपने निजि—स्वरूप में स्थायी भाव से विलीन हो जाता है।

दृष्टान्त न० ७—एक बन में एक मानव-दम्पति रहते थे। साथ तीन प्राणी और थे। एक बैल जो बोझा ढोता था वह इस परिवार की जीविका का साधन था। क्योंकि इसकी ही पीठ पर सामान लाद कर वह व्यक्ति बेचने जाता था साथ ही एक कुत्ता था जो रात को चौकी-दारी का काम करता था और एक तोता था जो अमृत वेला में उनको यूँ कहकर जगाता था "अमृत वेला है जागो।" एक रात बन से निकल कर शेर ने आकर बैल को मार डाला, कुत्ता डर के मारे झाड़ी में छिप गया। गृहस्थी ने जब प्रातः काल उठा तो देखा, बैल मरा पड़ा है। बोला-भगवान जो कुछ करता है भला करता है। यह बात पत्नी सुनकर कम्पायमान हो गई परन्तु मुख से कुछ न बोली। विपत्ति अकेली नहीं आती। उसी दिन तोता पिंजरे से बाहर निकला तो कुत्ते ने उसे

मार डाला । पति ने देखा—तोता मरा पड़ा है तो कहा अच्छा हुआ—प्रभु जो करते हैं, भला करते हैं इस पर स्त्री ने अपना सिर पीट लिया । वह इतनी दुःखी हुई कि उसे बोलने का साहस न हुआ । थोड़ी देर में किसी ने आकर कहा कि तुम्हारा कुत्ता गली में लोट पोट होते मर गया है । तो गृहस्थी ने कहा भगवान जो करते हैं हमारे हित के लिये करते हैं । इस बार स्त्री उबल पड़ी और क्रोध में आकर बोली—अब जिविका हीन होकर घर में पड़े रहो । खुराण्टे लेकर दिन चढ़े तक सोते रहो । क्योंकि भोजन दाता बैल था और जगाने वाला तोता था और कुता भी गया । अब रात को कोई चीता-शेर अथवा भेड़िया हमें अपने पेट में डाल लेगा ।" परन्तु पुरुष भगवान की कृपा मान कर सन्तुष्ट था तथा स्त्री अति दुःखी और व्याकुल थी । परन्तु दोनों को जीवन क्रम तो चलाना ही था । दिन गया रात आ गई । दोनों सो गये । प्रातः उठ कर क्या देखा—निकट ग्रामीण गृहस्थी मरे पड़े हैं लाशें ही लाशें बिछी पड़ी हैं । रात को डाकूओं ने आकर ग्राम वासिओं पर आक्रमण किया था । एक व्यक्ति भी जीवित न छोड़ा । झौंपड़ियों के फूटे बर्तन तक ले गए । इन की झौंपड़ी को सुनसान समझ कर छोड़ गए थे । क्योंकि इस बन की निकटवर्ती झौंपड़ी में न कोई कुत्ता था न किसी के रहने की संभावना की जा सकती थी ।

अब पुरुष अपनी स्त्री से बोला—साध्वी, यदि कुता जीवित होता तो हम भी मारे जाते । बैल बाहर बँधा दीखते तो भी मारे जाते । यदि तोता हमें अमृत वेला में जगाने के लिये होता तो डाकू आवाज़ सुनकर आ धमकते और हम भी मृत्यु के मुख में होते । और कहा तीनों पशुओं की मृत्यु का विधान दयामय प्रभु ने किया था । आज हम इस लिये जीवित हैं कि हमारे यहां पशु नहीं है । सज्जनों ! यह है प्रभु शरणागत—प्रभु भक्त का स्वरूप और विश्वास ।

भक्ति क्या है:—अपने में सद्भावपूर्वक आखण्ड सच्चिदानन्द-

घन की स्थापना कर अपना सब कुछ उस के अर्पण करके उसकी इच्छा में सन्तुष्ट रहने का अभ्यास करना ही अनन्य भक्ति है।

ज्ञान का स्वरूप क्या है:—ज्ञान का स्वरूप यदि क्रिया रूप में देखा जाये तो इसका नाम त्याग है। क्योंकि ज्ञान के लिये त्याग ही करना होता है। और यदि भाव रूप में देखा जावे तो उसका नाम प्रेम है क्योंकि बिना ज्ञान के प्रेम नहीं हो सकता।

उन्नति का साधन क्या है:—शरीरिक उन्नति के लिये सदाचार परमावश्यक है तथा मानसिक उन्नति के लिये सेवा परमावशयक है। तथा आत्मिक उन्नति के लिये त्याग परमावश्यक है।

सेवा और कर्म में क्या भेद है:—सेवा स्वामी से मिलाती है। अर्थात अपने लक्ष्य तक पहुँचाती है और कर्म फल में बांध लेता है।

गुरू क्या करता है और शिष्य क्या करता हैं:—गुरू प्रेम करता है शिष्य प्यार करता है। प्रेम और प्यार में यही अन्तर है कि प्यार दूसरों से और प्रेम अपने से होता है। गुरू की दृष्टि में शिष्य की सता अपने से भिन्न नहीं होती अतः वह प्रेम करता है। अपना सब कुछ दे देना प्यार और अपने को दे देना प्रेम है अतः शिष्य गुरू के प्रेम से गुरू हो जाता है। कामनावाला व्यक्ति प्रेम नहीं कर सकता, शिष्य कामना युक्त होता है। कामनारहित व्यक्ति नहीं होता। अतः गुरू में भूल कर भी व्यक्ति भाव नहीं देखना चाहिये।

भगवान क्या है और उसका वास्तविक स्वरूप क्या है:—भगवान सब प्रकार से पूर्ण हैं। यदि उसके वास्तविक स्वरूप को जानना चाहते हो तो अपने माने हुऐ स्वभाव को मिटा दो। अर्थात अपने आप को खाली कर लो रिक्त होते ही भगवान के स्वरूप का अनुभव करसकोगे। भगवान के वास्तविक स्वरूप का अनुभव करने के लिए आपको अपने सिवाय किसी और की सहायता की आवश्यकता नहीं है। यहां तक कि इन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि को भी छोड़ना होगा। जब आप अकेले हो जाऐंगे तब भगवान की कृपा से ही भगवान को जान लेंगे। प्यारे!

कोई भी प्रेमी अपने प्रेम पात्र से किसी के सामने नहीं मिलता, तो फिर आपका तो फिर आपका प्रेम पात्र कैसे मिल सकता है, जब तक कि आप शरीर आदि अनेक सम्बन्धियों को साथ लिये हुऐ हैं । भगवान कैसे हैं यदि यह जानना चाहते हो तो अकेले हो जाओ ।

सदाचार क्या है:—सदाचरण वही है कि जिस के करने से भय-रहित स्थायी शान्ति प्राप्त हो और किसी का अनहित न हो । तथा ऐसा करने में कर्ता सदैव स्वतन्त्र है ।

सच्चा तप क्या है:—जिससे निर्बलता न रहे वही सच्चा तप है । जो आगे पीछे का चिन्तन न करेने से प्राप्त होता है ! क्योंकि व्यर्थ चिन्तन मिट जाने पर मन अविषय हो जाता है ।

अविषय होते ही अनन्त शक्ति से सम्बन्ध होता है, अतः कर्ता आवश्यक शक्ति लेकर निर्बलता का अन्त कर देता है। जो वास्तव में तप का फल है । इस दृष्टि से आगे पीछे का चिन्तन न करना तथा एक ही समय में एक ही कार्य करना सच्चा तप है ।

दृष्टान्त ४:—लुकमान हकीम का नाम संसार में विख्यात है । उन के पास अनेक व्यक्ति शिष्य बनने के लिये आये, परन्तु पहले वे उनकी परीक्षा करते, योग्यता देखते, परीक्षार्थ एक कन्दरा बनाई हुई थी जिस में अत्याधिक शीतलता थी और अन्दर अँधेरा था । नियम यह था कि जो शिष्य बनना चाहे वो रात को उसी कमरे में आकर ठहरे । प्रातः काल यदि वो जीवित अवस्था में बाहर निकलेगा तो उसे शिष्य बनाया जावेगा। अतः जो शिष्य बनने के लिये आता उसे रात को कन्दरा में प्रविष्ट कर दिया जाता। कन्दरा की अत्याधिक शीतलता के कारण वह मर जाता। प्रातः उसका शव निकाल कर परिवार वालों को सौंप दिया जाता । इसी प्रकार अनेकों व्यक्ति मरे, प्रन्तु एक दिन एक व्यक्ति आया उसे भी रात को कन्दरा के अन्दर प्रविष्ट कर दिया गया । अन्दर पहूँ-चते ही उसे ठंड (शीत) लगने लगी । अन्दर अँधेरा था अतः वह अन्दर

ही झुक कर कमरे में हाथ मारने लगा तो उसके हाथ में दो मुगदर लगे। उसने उन्हें उठाकर घुमाना आरम्भ किया तो जान में जान आई और शरीर में पर्याप्त गर्मी आ गई तो कुछ देर बैठ गया। इसी प्रकार वह रात्रीं भर करता रहा। प्रातः काल वह कन्दरा से जीवित निकला, अतः उसको शिष्य बना लिया गया। यह था तप।

दैवयोग से राजा के पुत्र को रोग लग गया, रोग मस्तिष्क का था। लुकमान हकीम ने जब देखा, तो राजा से कहा कि इस के सिर का अपरेशन होगा, अतः मैं कह नहीं सकता कि अपरेशन करने से नीराग हो जाएगा या मृत्यु हो जाएगी। मेरा काम पुरुषार्थ करना है। आप मुझे लिख कर दे दें कि यदि इसके अपरेशन करने पर इसकी मृत्यु हो जाए तो हकीम साहेब का कोई उत्तरदायित्व न होगा। राजा ने ऐसा ही लिख दिया। इस अपरेशन के शस्त्र तथा सामग्री तैयार की गई। लुकमान हकीम राजमहल में गए और आदेश दिया कि द्वारपालों को विशेष आदेश दे दो कि किसी को अन्दर मत आने दें और न ही किसी की आवाज़ आये। अब राजा के पुत्र को आपरेशन के लिये लाया गया उस के सिर की खोपड़ी काटी गई पीछे आश्रम पर शिष्य ने अनुभव किया कि अब राज पुत्र की खोपड़ी उतार ली गई होगी अतः उस ने तत्काल ही कपड़े बदले और हाथ में शस्त्र लेकर वह राज महल के द्वार पर आ पहुँचा। द्वार पालों ने अन्दर जाने से रोका, परन्तु शिष्य ने कहा अन्दर अपरेशन हो रहा है मेरा हकीम साहब के पास पहुँचना अत्यावश्यक है अतः यदि आपने न जाने दिया तो राज कुमार मर जाएगा और तुम उसके जम्मेदार बन जाओ गे तथा तुम उतर दायक होगे। दरबान ने भयभीत होकर उसे अन्दर जाने दिया। इसी प्रकार से सात द्वारों से होता हुआ वह अपरेशन वाले कमरे तक पहुँच जया। और कमरे की छत पर चढ़कर रोशन दान से देखने लगा—क्या देखता है-कि सर की खोपड़ी उतार दी गई है। मस्तिक में कीड़ा चिमटा हुआ

है। लुकमान उस कीड़े को यन्त्र से पकड़ कर उतारने लगा, शिष्य ने आवाज़ दी कि पहले यन्त्र को गरम करो, फिर कीड़े को निकालो। लुकमान आवाज़ सुनकर आश्चर्य चकित हो गया कि यह आवाज़ कहां से आ रही है? मैंने तो चारों ओर से दरवाजे बंद कर दिये थे। इधर उधर देखने के बाद फिर यन्त्र से कीड़े को खैंचने लगा तो फिर शिष्य ने आवाज़ दी कि पहले यन्त्र को गरम करो। आवाज़ सुनकर चकित हो गया। पुनः रोशन दान में शिष्य ने कहा कि पहले यन्त्र को गरम करो पुनः कीड़े को पकड़ो। गरम यन्त्र के लगाने से कीड़ा दिमाग से अपना पंजा छोड़ देगा, अतः राज कुमार बच जायेगा। यदि ऐसे ही खैंचो गे तो कीड़े के टूट जाने की आशंका है और कीड़े के टूट जाने से राज पुत्र की मृत्यु हो जाये गी। सज्जनों! यह है तप और ज्ञान।

आजकल तो केवल ज्ञान का प्रचार है तप का नहीं। ब्रह्मचर्य-का तो दिवाला निकल गया है। बिना तप के ज्ञान बेकार है। एक पुस्तकीय ज्ञान है। दूसरा वह ज्ञान है जो तप द्वारा अन्तः करण से वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। आजकल भारत में काम का राज है। काम से ध्यान मारा जाता है। ध्यान के नष्ट होने से बुद्धि का नाश हो जाता है बुद्धि के नाश होने से ज्ञान का नाश हो जाता है। ज्ञान के नष्ट होने से विचार भ्रष्ट हो जाते हैं। बिचारों के भ्रष्ट होने से कर्म भ्रष्ट हूंगे कर्म भ्रष्ट होने से दुःख अथवा नरक होगा। कामी की आँख नहीं रहती। न ही साख रहता है।

वर्तमान अवस्था में भारत के राज धिकारी बरथ कण्ट्रौल के उपाय सोच कर नये २ ढंग तरीके निकाल रहे हैं। इन कामान्ध आधिकारियों से पूछो क्या तुम्हारे इन ढंगों तरीकों से बरथ कण्ट्रौल होगा। नहीं हरगिज़ नहीं, राग के उपाये करने से पूर्व परहेज़ करना होगा। वह हैं ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचर्य को शिक्षा यह ना तो गुरूकलों में न स्कूलों कालजों पाठशालाओं में दी जाती है किन्तु स्कूलों-कालजों और पाठशालाओं को देखो। बनावट सजावट तथा शृंगार का रूप हैं। दुकानों-

गलियों-कूचों और महल्लों तथा घरों में जाकर देखो-कामिनी स्त्रीयों के रूप चित्र हैं। और सिनेमा टाकोज में तो चरित्र-सदाचार का दिवाला ही निकाल दिया है। इन का आहार-सिग्रेट-बीड़ी-शराब-मांस-अण्डा मछली का सेवन करना जो कामाग्नि को उत्पन्न करने वाला है तो ऐसे आहार करने से जो सन्तान उत्पन्न होगी क्या वह राम राज उत्पन्न करने वाली होगी या राक्षसों की सैना उत्पन्न होकर भारत को नष्ट भ्रष्ट करेगी। जब राजा राज कर्मचारी इस रोग से रूग्ण हों तो फिर प्रजा का पथ प्रदर्शक कौन बने? ये आँख के अन्धे आप भी डूबेंगे और राज्य को भी साथ ले डूबेंगे। भगवान ही अब भारत का रक्षक हो।

ईश्वर प्राप्ति का सरल उपाय क्या है:--यदि स्वतन्त्रता पूर्वक ईश्वरानुभव करना चाहते हैं, तो उनके बिना चैन से न रहो। अर्थात विरह उत्पन्न करो। विरह को विरही के अतिरिक्त और किसी साधन की आवश्यकता नहीं होती। जिस प्रकार सूर्योदय होते ही अन्धकार का अन्त हो जाता है उसी प्रकार विरह उत्पन्न होते ही सब प्रकार के दोषों का अन्त हो जाता है। दोषों का अन्त होते ही ईश्वर प्राप्ति अपने आप हो जाती है। यह भली प्रकार समझ लो कि विरहाग्नि में सभी विकार जल जाते हैं, और यह नियम है कि विकारग्रस्त जीवन निर्बिकार तत्व अनुभव करना हो तो मीन (मछली) के जीवन को देखो कि वह जल के न बिना कैसे रहती है और क्या करती है।

प्रेम पात्र से स्थायी संग:-कुछ व्यक्ति अपने प्रेम पात्र के महान आत्माओं में देखते हैं। कुछ मनुष्य तीर्थादि-मूर्तियों में देखते हैं। कुछ लोग नाममन्त्र शास्त्रादि में। कुछ मानव षट्चक्र हृदयशब्दादि में देखते हैं। इन सभी महानुभावों का सयोंग होने पर वियोग अवश्य करना पड़ता है। क्योंकि वे लोग अपने आप को बचा कर रख लेते हैं। इस लिए स्थायी संग नहीं कर पाते। तथा जो अपने प्रेममात्र को अपने में अनुभव करते हैं, उनको वियोग का दुःख उठाना नहीं पड़ता। अपने से भिन्न कितना ही समीप क्यों न हो, देखिये फिर भी वियोग

अवश्य होगा। अतः प्रेमपात्र को अपने में अनुभव करने से उनसे स्थायी संग हो जाता है ; प्रेम पात्र को अपने से भिन्न वहीं देखते हैं जो विषयों की सत्ता का त्याग नहीं कर सकते। इसी कारण विषयी बेचारा प्रेम पात्र की खोज करने के लिए संसार में भटकता हैं।

प्रेम पात्र वही है जिसके बिना प्रेमी किसी प्रकार भी न रह सके जिन के बिना प्रेमी किसी प्रकार भी रह सकता है वह प्रेमपात्र नहीं है। क्योंकि त्याग उनको होता हैं जिनसे एकता मानी हुई होती है। शरीर आदि सभी का त्याग हो जाता है क्योंकि मानी हुई एकता है। जिसको शरीरादि की सभी आवश्यकताओं का अनुभव है वह अनुभव स्वरूप नित्यसत्ता ही प्रेमी का प्रेम पात्र है। क्योंकि नित्य की अभिलाषा ही प्रेमी का स्वरूप है। अतः प्रेम पात्र की अभिलाषा ही का नाम प्रेमी है क्योंकि प्रेमपात्र का अनुभव होने पर प्रेमी की सत्ता शेष नहीं रहती। किसी भी प्रेमी ने प्रेमी बन कर प्रेमपात्र नहीं देखा क्यों कि प्रेमपात्र के वियोग में प्रेमी होता है। प्रेम पात्र वह है जो प्रेमी को देखता हैं।

वह कहां और कैसे मिलता है।

उसी को ढूंडता फिरता हुआ मस्जिद में जा पहुंचा।
जो देखा वां भी है रोजे नमाजों का ही एक चर्चा॥
कोई जुब्बों में अटका है कोई डाढ़ी में उलझा है।
तसल्ली कुछ न पाई जब, तो आखिर वांसे घबराया॥
यही दिल कहा टुक मदरसे को, झांकिये चल कर।
भला शायद इसी में हो नज़र आ जाए वह दिलवर।
गया जब वां तो देखी हालतें कुछ से भी बदतर।
किताबें खुल रही हैं मच रही है शोरोग़ुल यकसर॥

१४४ (१४५) पत्नि से जो तुम उत्तम बातें देखना चाहते हो तो पहले तुम आदर्श बनो ।

कहा दिल ने टुक अब तीर्थों की सैर भी कीजिये ।
भला वह दिलरूबा शायद उसी मौका पे मिल जाए ॥
बहुत तीर्थ थे घूमे और किये दर्शन भी बहुतेरे ।
तसल्ली कुछ न पाई जब तो हो लाचार फिर वांसे ॥
गया जब दशतो सहरा में तो रोया आह क्या कर ये ।
यही बेहतर है अब तो डूबिये या ज़हर खा मरिये ॥
जब इस हालत को मैं पहुँचा, तो वह महबूब बेपरवाह ।
वहीं सौ बेकरारी से मेरी वालें पे आ पहुँचा ॥
उठा कर सर मेरा ज़ानू पे रख के फरमाया ।
कहा ले देख ले जो देखना है, अब मुझे इस जा ॥
यह सुन रख पहले हम आशिक को अपने आज़माते हैं ।
जलाते हैं सताते हैं रूलाते हैं बुलाते हैं ॥
हर एक सूरत में हम जब खूब साबित उस को पाते हैं ।
उसी दम आके मिलते हैं, तजल्ली को दिखाते हैं ।
हुई जब आके यकताईः दूई का उठ गया परदा ॥
जो कुछ वहम शुबहे थे उड़ गये एक दम में हो पारा ।
नज़ीर उस दिन से हमने खूब देखा है उसे हरजा ।
वही देखा-वही समझा-वही जाना-वही पाया ॥

———

(१४६ यह विश्वास रखो पत्नि की प्रसन्नता से घर की प्रसन्नता १४५
होगी ।

"भक्त जब उसे पा लेता है तो कहता है ।"

जब से आके हम ने चूमे हैं, तुम्हारे यह कदम ।
तब से जग पाबीस बस सारा हमारा हो गया ॥
मैं नहीं अब तू ही तू है, जिस तरफ जाये निगाह ।
सब तेरे माईल हों, जब मैं तुम्हारा हो गया ॥
हो गया खुश मस्त पी करके, मए वहदत का जाम ।
मुझ को यकसां मस्जिद, व ठाकुर द्वारा हो गया ॥
तू है बहरे हुसन, मैं नाचीज़ हूं मिसले हुबाब ।
मुझ को सब से हट के इक, तेरा सहारा हो गया ॥
ऐ सनम जब से लिया है, तुझ को मैं ने दर किनार ।
खेश क्या बेगाना बस, सबसे किनारा हो गया ॥
हाजतें जन्नत नहीं है, और न हूरों की हवस ।
जब कि तू जगदीश ही, मेरा प्यारा हो गया ॥

ओ३म शम

स्वामी ब्रह्मानन्द ॥

पञ्चनद प्रेस लिमिटिड, दुर्ग्याना आबादी अमृतसर